आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च

विवेक-शिखा

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख हिन्दी मासिकी

वर्ष • २३ | जनवरी • फरवरी • २००४ | अंक : १-२

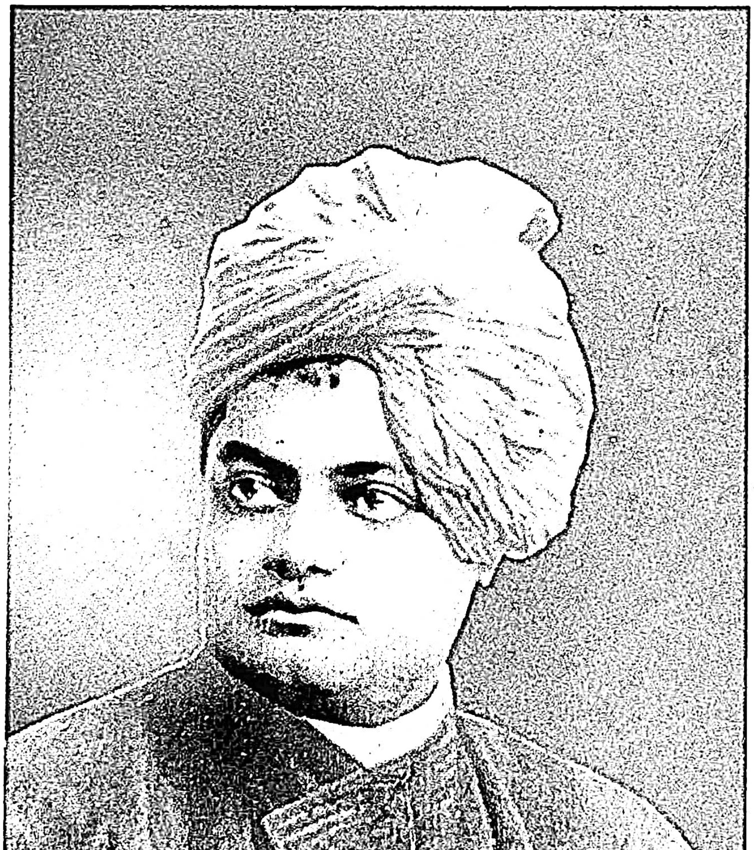

रामकृष्ण निलयम, जयप्रकाश नगर, छपरा - ८४१ ३०१ (बिहार)

RAMAKRISHNA MISSION SEVASHRAMA
Vijanananda Marg, Mutthiganj
Allahabad, 211003
Phone : 413369

AN APPEAL

Dear Friend,

Ramakrishna Math & Ramakrishna Mission Sevashrama at Allahabad was founded in 1910 by His Holiness Srimat Swami Vinjananandaji Maharaj (1868-1938), a direct disciple of Sri Ramakrishna. Since then this centre has been rendering services to the people of Allahabad without distinction of caste, class and creed.

Besides cultural, religious and spiritual activities, this.ssevashrama is running (1) A Public Library with a collection of 28,500 valuable books on various subjects with its 744 members and a Reading Room which receives 14 dailies and 41 periodicals in Hindi, Engilish and Bengali languages. Daily average attendance in the Library and Reading Room is 70.

(2) A Homeopathic-cum-Allopathic Dispensary with Pathology, Physiotherapy, ECG Ultrasound and specialist consultancy services such as Eye, E.N.T., Dental, Gynecology Orthopedic, Cardiology, Paediatrics and Medicines. Daily about 300 Patients are being benefitted by this dispensary.

There is a great need for the extension of The Library for increasing the Text Book Section and also for providing space for the students to study. Also the lecture hall needs extension for accommodationg more people as the present Lecture Hall hardly accommodates 150 persons and is inadequate to meet our requirements for holding functions like Bhakta Sammelan and Youth Convention etc.

Similarly, a great need is felt for an operation theatre in the Dispensary along with male and female wards and also an X-Ray plant.

ESTIMATE OF FUNDS REQUIRED FOR

1. Extension of Library cum Lecture Hall. — Rs. 18 lakh
2. Extension of Dispensary Building including Operation theatre, — Rs. 22 lakh
3. Male & Female wards and X-ray machine

Your generous donation for this holy cause will help us to run the activites smoothly and serve the people in a better way. We shall remain obliged for your contribution towards the cause. Your contribution will be thankfully acknowledged. Donation to Ramakrishna Mission Sevashrama are exempted from Income Tax under Section 80G of the Income Tax Act, 1961. Please send your Cheque/Draft etc. in favour of "Ramakrishna Mission Sevashrama." crossed and account payee.

With prayer to the Lord for your welfare.

Yours in the service of the Lord

(Swami Tyagatmananda)

॥ उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ॥

विवेक-शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की प्रमुख
हिन्दी मासिकी

जनवरी-फरवरी-२००४

सम्पादक
डॉ० केदारनाथ लाभ
सहायक सम्पादक
ब्रज मोहन प्रसाद सिन्हा

वर्ष २३
अंक १-२

वार्षिक ६०/- एक प्रति १०/-

आजीवन ग्राहकता शुल्क
(20 वर्षों के लिए) ७००/-
संरक्षक-योजना
न्यूनतम दान-१०००/-

-: सम्पादकीय कार्यालय :-

विवेक-शिखा

रामकृष्ण निलयम्, जय प्रकाश नगर
छपरा : ८४१ ३०१ (बिहार)
दूरभाष : (०६१५२) २३२६३९

संस्थापक प्रकाशिका
स्व० श्रीमती गंगा देवी

इस अंक में

१. श्रीमाँ सारदा देवी ने कहा है ३
२. वन्दना ४
डॉ० केदारनाथ लाभ
३. पास ही रे हीरे की खान ५
(सम्पादकीय सम्बोधन)
४. हिन्दूधर्म की विशेषता ७
स्वामी विवेकानन्द
५. श्रीमाँ सारदा देवी ९
स्वामी अद्‌भुतानन्दजी महाराज
६. नारी जाति का आदर्श-श्रीमाँ सारदा देवी १०
स्वामी वीरेश्वरानन्दजी
७. जीवन की सीख १७
स्वामी रंगनाथानन्द
८. ज्ञान का दीप जलाए रखूँगा १९
डॉ० ए.पी.जे. अब्दुल कलाम
९. स्वामी विवेकानन्द का आध्यात्मिक आक्रमण २०
स्वामी गौतमानन्द
१०. स्वामी विवेकानन्द का संदेश २३
महामहिम विष्णुकान्त शास्त्री
११. गुरुत्व की तीन शर्तें २७
स्वामी शशांकानन्द
१२. महावीर की अहिंसा ३०
डॉ० रंजन सूरिदेव
१३. धार्मिक सद्भावना के प्रतीक : गुरुगोविन्द सिंह ३२
डॉ० महीप सिंह
१४. विवेकानन्द साहित्य अध्ययन का प्रयोजन ३४
एक साधु
१५. एक सपना ३६
श्रीमती डॉ० सन्ध्या तिवारी
१६. स्वामी विवेकानन्द के प्रति (कविता) ३७
डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण
१७. समाचार एवं सूचनाएँ ३८

वन्दना

—डॉ० केदार नाथ लाभ

मेरे मन-मानस-मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो !

तुम ही मेरी पूजा-अर्चा
कीर्तन वन्दन चिन्तन चर्चा

निज पद-रज से मम जीवन को, प्रभु नव वृन्दावन धाम करो !
मेरे मन-मानस-मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो !!

नयनों में रूप तुम्हारा हो
उर में तव रस की धारा हो

अधरों पर नाम तुम्हारा हो, प्रभु ऐसा आठो याम करो !
मेरे मन-मानस-मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो !!

तुमने गिरीश को था तारा
हो गया रसिक भंगी न्यारा

सँवरी विनोदनी नटी नाथ, मुझ पर करुणा अविराम करो !
मेरे मन-मानस-मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो !!

मम काम क्रोध मद मोह हरो
अब और न अधिक मुझे बिसरो

कर्मों के कोलाहल पर धर, अंकुश प्रभु पूर्ण विराम करो !
मेरे मन-मानस-मन्दिर में, प्रभु रामकृष्ण विश्राम करो !!

❑ ❑ ❑

पास ही रे हीरे की खान

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

'विवेक शिखा' के पाठकों, ग्राहकों एवं शुभ चिंतकों को नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ। हमारे परम पावन त्रिदेव-भगवान् श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्दजी–की अशेष अहेतुकी कृपा आप सब पर अनवरत बरसती रहे, यही मेरी उनसे आंतरिक प्रार्थना है।

इस अंक के साथ ही विवेक शिखा 23 वें वर्ष में प्रवेश कर रही है। यद्यपि इसके प्रकाशन में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं, बाधा-व्यवधान आते रहे हैं, नियमितता-अनियमितता के ज्वार-भाटे उठते-गिरते रहे हैं, फिर भी आपके अपार स्नेह-सहयोग ने इसे गतप्राण होने से अब तक बचाये रखा है। आपकी इस उदारता एवं स्नेहशीलता से मैं भावविभोर हूँ। विश्वास है,आपका यह सहयोग हमें सदैव उपलब्ध रहेगा।

इस वर्ष हमने इसे नियमित करने का एक सूर्योदय-संकल्प लिया है। प्रेस बदल दिया है। हो सकता है हम दो माह के अंक एकसाथ ही निकाला करें। परन्तु कुछ पृष्ठ बढ़ा दिये जाएँगे। और जब इसका प्रकाशन नियमित होने लगेगा तो पुनः प्रति माह निकालने की चेष्टा की जायेगी। इस बीच आपका सहयोग हमें मिलता रहे-यही आपसे हमारी विनय है, प्रार्थना है। विश्वास है, आप हमें निराश नहीं करेंगे।

मित्रो, आज हम एक विचित्र स्थिति से गुजर रहे हैं। देश में चारों ओर आपाधापी मची है। भ्रष्टाचार का दैत्यराज हिमालय के उत्तुंग शिखर पर खड़ा होकर नग्न अट्टहास कर रहा है। स्टाम्प घोटाला, प्रश्न-पत्र लीक होने का घोटाला, नकली सिक्कों के निर्माण आदि न जाने कितने घोटालों के समाचार नित्य दीख पड़ते हैं। राजनेता, प्रशासन एवं अपराधी-तीनों ने मिलकर एक ऐसा चक्रव्यूह तैयार कर लिया है जिसमें हमारे राष्ट्र का अभिमन्यु बुरी तरह घिर गया है। चरित्र और चारित्र्य में भयंकर भूस्खलन हो रहा है। दूर संचार मीडिया और टी.वी. आदि ने मिलकर एक अपसंस्कृति की अट्टालिका खड़ी कर रखी है। और हम इनकी गिरफ्त में आकर अपने मूल स्वरूप को, अपने देवत्व को, अपने अमृतत्व को भूलते जा रहे हैं। हिंसा और भ्रष्टाचार हमारा जीवन-संगीत हो गये हैं, अपहरण और बलात्कार हमारे जीवन-यज्ञ हो गये हैं। क्रूरता हो गयी है हमारी पहचान और मूल्यहीनता हो गयी है हमारी नियति और जीवन का संविधान। ऐसी स्थिति में लोग अक्सर पूछते हैं–उपाय क्या है ? पूछते हैं वे कि कहाँ है वह ज्योति-पुरुष जो हमें इस निविड़-तिमिर से उबारे, कहाँ है वह अग्नि पुरुष जो अज्ञानांध-कार के गहन गह्वर से निकाल कर आलोक के प्रशस्त पुण्य पंथ पर हमें ले चले ! कहीं कुछ तो दिखाई नहीं पड़ता !

है, हमारे पास ही है वह आलोक स्तम्भ। एक कविता पढ़ी थी–

पास ही रे हीरे की खान
ढूँढ़ता उसे कहाँ नादान ।

वह ज्योतिर्धर, वह ज्ञान-गंगाधर हमारे पास ही है। हम व्यर्थ उसे ढूँढ़ने में परेशान हो रहे हैं। वह गंगाधर हैं स्वामी विवेकानन्द। वे हमसे दूर नहीं हैं। विवेकानन्द-साहित्य के पूरे पाँच हजार पृष्ठों में वे स्वयं मूर्त महेश्वर हो उठे हैं। उसका हर पृष्ठ विवेकानन्द का जीवन्त विग्रह है, हर वाक्य विवेकानन्द की मंत्र-मंदाकिनी है। जरूरत है हम अपनी आँखें खोलें-'घूंघट के पट खोल रे, तोहे पिया मिलेंगे।' स्वामीजी के निकट जाने के लिए हमें विवेकानन्द साहित्य पढ़ना होगा। कम से कम उनका–भारतीय व्याख्यान, पत्रावली शक्तिदायी विचार तो पढ़ना ही चाहिए। राजनेताओं को, प्रशासकों को, छात्रों को और छात्रों से पहले उनके शिक्षकों को पढ़ना चाहिए। यदि हमने इन्हें नहीं पढ़ा तो मानो हमारा जन्म ही नहीं हुआ।

स्वामीजी ने हमें सिखाया है–ईश्वर को मन्दिर में ही नहीं खोजो, वह सर्वत्र व्याप्त है। जो शिव को मन्दिर में ही उपासना करता है उसकी पूजा प्रारम्भिक है। जो सभी जीवों में उसके दर्शन करता है, शिव उस पर अधिक प्रसन्न होते हैं।

श्रीमद्भागवत में कपिल मुनि की एक प्रेरक कथा है। भगवान ने कपिल के रूप में अवतर लिया। कपिल घर छोड़कर तपस्यार्थ वन जाने लगे। उनकी माँ देवहूति ने उनसे कहा–प्यारे पुत्र, मुझे कुछ उपदेश तो देते जाओ। तो कपिल देव ने कहा–

अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मावस्थितः सदा।
तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चाविडम्बनम्॥ (३.२९.२१)

अर्थात् मैं सदा-सर्वदा सभी प्राणियों में जीवात्मा के रूप में अवस्थित रहता हूँ। यदि लोग वहाँ मेरी अवज्ञा करके, मेरा अपमान करके महज मन्दिरों में स्थित मेरी मूर्ति की पूजा-अर्चना करते हैं तो यह केवल एक दिखावा है, एक विडम्बना मात्र है।

स्वामीजी ने यही व्यापक दृष्टि हमें दी है। इसी एकात्मकता का दिव्य संगीत उन्होंने हमे सुनाया है। प्राण-प्राण को प्रेम के, अनुराग के स्वर्णसूत्र में पिरोकर मानव में माधव का दर्शन करने की एक अभिन्न दृष्टि उन्होंने हमें दी है। जरूरत है कि हम विवेकानन्द साहित्य पढ़ें, उनके अग्निमंत्र में अभिषिक्त हों, उनकी त्रयताप-हारिणी विचार-मन्दाकिनी में अवगाहन कर अपना, अपने समाज का और अपने राष्ट्र का नव निर्माण करने में अग्रसर हो जायँ।

सागर-तट पर स्थित किसी ग्राम में आग लग जाय तो मनुष्य उस आग को बुझाने के लिए तालाब नहीं खोदता, वह सागर-जल से ही आग बुझाता है। गंगा- तट पर खड़ा व्यक्ति अपनी प्यास बुझाने कुआँ नहीं खोदता, गंगाजल पीकर ही प्यास बुझाता है और चन्दन-वन के निकट कोई थका व्यक्ति छाँव के लिए पेड़ नहीं लगाता—सीधे चन्दन वन में विश्राम लेता है। स्वामी विवेकानन्द हमारे जलते प्रश्नों के समाधान के लिए प्रशान्त महासागर हैं, हमारे समाज की समस्याओं के समाधान के लिए ब्रह्मवारि हैं और हमारे थके जीवन के लिए शीतल चन्दन वन हैं। वे दूर नहीं हैं। हमारे पास ही हैं। आइए, हम उनके पास चलें, अपने हीरे की खान के पास चलें।

❑

हमारे कुछ महत्त्वपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार	७०.००
श्रीरामकृष्ण	०५.००
मनस्तत्व और आत्मानुभूति	३०.००
योगदर्शन एवं योगसाधना	५०.००
मुक्ति के उपाय	१०.००

स्वामी प्रज्ञानानन्द प्रणीत

राग और रूप ३००.००

रामकृष्ण वेदान्त मठ

१९ए एवं बी राजा राजकृष्ण स्ट्रीट, कोलकाता—७०० ००६

☎ ३३) ५५५-८२९२, ७३००

E-Mail : ramakrishnavedantamath@vsnl.net

Website : www.ramakrishnavedantamath.org

हिन्दू धर्म की विशेषता

स्वामी विवेकानन्द

हिन्दू धर्म मानवात्मा के लिए केवल एक कर्तव्य बताता है- वह नश्वरता के बीच अनश्वर को पाने की खोज है। कोई भी मनुष्य ऐसा एक मार्ग बताने का साहस नहीं करता, जिसके द्वारा वह प्राप्त किया जा सकता है। विवाह अथवा अ-विवाह, भलाई अथवा बुराई, विद्वत्ता अथवा अज्ञान, इनमें से कोई भी उचित है, यदि वह हमें ध्येय की ओर ले जाता है । इस तरह इसमें और बौद्ध-मत में बड़ा अन्तर है...। क्या आपको महाभारत में उस युवक योगी की कहानी याद है, जो अपनी मनोशक्ति पर इसलिए गर्व करता था कि उसने एक कौवे और एक सारस के शरीर को अपनी तीव्र इच्छा-शक्ति के अनुसार क्रोध से उत्पन्न हुई अग्नि से जला दिया था । क्या आपको याद है कि वह युवक योगी नगर में जाता है और पहले एक पत्नी को अपने रोगी पति की सेवा करते हुए पाता है और फिर कसाई धर्म-व्याध को देखता है, जिन दोनों ने सामान्य सच्चाई और कर्तव्य के मार्ग से ज्ञान प्राप्त किया है ।

वेदान्त दर्शन की अत्युच्च आध्यात्मिक उड़ानों से लेकर- आधुनिक विज्ञान के नवीनतम आविष्कार जिसकी केवल प्रतिध्वनि मात्र प्रतीत होते हैं, मूर्तिपूजा के निम्न स्तरीय विचारों एवं तदानुषंगिक अनेकानेक पौराणिक दन्तकथाओं तक और बौद्धों के अज्ञेयवाद तथा जैनों के निरीश्वरवाद-इनमें से प्रत्येक के लिए हिन्दू धर्म में स्थान है।

हिन्दुओं की दृष्टि में समस्त धर्मजगत् भिन्न-भिन्न रुचिवाले स्त्री-पुरुषों की, विभिन्न अवस्थाओं एवं परिस्थितियों में से होते हुए एक ही लक्ष्य की ओर यात्रा है, प्रगति है। प्रत्येक धर्म जड़-भावापन्न मानव से एक ईश्वर का उद्भव कर रहा है और वही ईश्वर उन सबका प्रेरक है। तो फिर परस्पर इतने विरोध क्यों है ? हिन्दुओं का कहना है कि ये विरोध केवल आभासी हैं। उनकी उत्पत्ति सत्य के द्वारा भिन्न अवस्थाओं और प्रकृतियों के अनुरूप अपना समायोजन करते समय होती है।

हिन्दू की दृष्टि से मनुष्य भ्रम से सत्य की ओर नहीं जा रहा है। वह तो सत्य से सत्य की ओर, निम्न श्रेणी के सत्य से उच्च श्रेणी के सत्य की ओर अग्रसर हो रहा है। हिन्दू के मतानुसार निम्नतम जड़-पूजावाद से लेकर सर्वोच्च ब्रह्मवाद तक जितने धर्म हैं, वे सभी अपने अपने जन्म तथा साहचर्य की अवस्था द्वारा निर्धारित होकर उस असीम के ज्ञान तथा उपलब्धि के निमित्त मानवात्मा के विविध प्रयत्न है और यह प्रत्येक प्रयत्न उन्नति की एक अवस्था को सूचित करता है । प्रत्येक जीव उस युवा गरुड़ पक्षी के समान है, जो धीरे-धीरे ऊँचा उड़ता हुआ तथा अधिकाधिक शक्ति-सम्पादन करता हुआ, अन्त में उस भास्वर सूर्य तक पहुँच जाता है ।

हमारे धर्म के सम्प्रदायों में अनेक विभिन्नताएँ तथा अन्तर्विरोध होते हुए भी एकता के अनेक क्षेत्र हैं। प्रथम, सभी सम्प्रदाय तीन चीजों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं-ईश्वर, आत्मा और जगत्। ईश्वर वह है, जो अनन्त काल से पूरे विश्व का सर्जन, पालन और संहार करता आ रहा है। सांख्य दर्शन के अतिरिक्त सभी इस सिद्धान्त पर विश्वास करते हैं। इसके बाद आत्मा का सिद्धान्त और पुनर्जन्म की बात आती है। इसके अनुसार असंख्य जीवात्माएँ बार-बार अपने कर्मों के अनुसार शरीर धारण कर जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमती रहती हैं । इसी को संसारवाद या प्रचलित रूप से पुनर्जन्मवाद कहते हैं। इसके बाद यह अनादि अनन्त जगत् है। यद्यपि कुछ लोग इन तीनों को भिन्न-भिन्न मानते हैं तथा कुछ इन्हें एक ही के भिन्न-भिन्न तीन रूप और कुछ अन्य प्रकारों से इनका अस्तित्व स्वीकार करते हैं, पर सभी इन तीनों का अस्तित्व मानते हैं।

आजकल प्रायः यह निन्दा सुनने में आती है कि हिन्दुओं का धर्म दूसरों के धर्म को जीत लेने में सचेष्ट नहीं है; और मैं बड़े दुःख से कहता हूँ कि यह बात ऐसे व्यक्तियों के मुँह की होती है, जिनसे हम और भी ज्ञान की अपेक्षा रखते हैं । मुझे तो लगता है कि हमारा धर्म दूसरे धर्मों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है। इसके पक्ष में प्रधान युक्ति यही है कि हमारे धर्म ने कभी दूसरे धर्मों पर विजय प्राप्त नहीं की, उसने कभी खून की नदियाँ नहीं बहायीं, इसने सदा आशीर्वाद एवं शान्ति के शब्द कहे, सबको प्रेम और सहानुभूति

की कथा सुनाई। यहीं, सर्वप्रथम केवल यहीं, दूसरे धर्म से द्वेष न रखने के भाव प्रचारित हुए। अन्य देशों में यह केवल सिद्धान्त-चर्चा मात्र है। यहीं, केवल यहीं, देखने में आता है कि हिन्दू मुसलमानों के लिए मस्जिदें और ईसाइयों के लिए गिरजे बनवाते हैं।

चिन्तन एवं मनन-युक्त दर्शनशास्त्र तथा भिन्न-भिन्न वेदों में प्रतिपादित नैतिक उपदेश ही हिन्दू धर्म के प्रधान तत्त्वों का आधार है। वेदों का कथन है कि देश एवं काल की दृष्टि से यह विश्व अनन्त और सनातन है। यह न तो कभी शुरू हुआ, न कभी समाप्त होगा। इस जड़-जगत् में वह चित्-शक्ति अगणित प्रकारों से प्रकाशित हुई है, इस सान्त के राज्य में उस अनन्त की शक्ति नाना रूपों में व्यक्त हुई हैं, तथापि वह अनन्त चित्-सत्ता स्वरूपतः स्वयम्भू, सनातन एवं अपरिणामी है। काल की गति का शाश्वत सत्ता पर कोई असर नहीं होता। मानव-बुद्धि के लिए सर्वथा अगम्य, जो अतीन्द्रिय भूमि है, वहाँ न तो भूत है और न भविष्य। वेदों का कथन है कि मानव की आत्मा अमर है। देह वृद्धि और क्षय के नियमों से बद्ध है; जिसकी वृद्धि है, उसका क्षय भी अवश्यम्भावी है। पर देहस्थ आत्मा तो असीम एवं सनातन है; अनादि और अनन्त है।

अपने धर्म में दूसरों का सम्मिलित होना हिन्दुओं द्वारा सहन किया जाता है। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह शूद्र हो या चाण्डाल, ब्राह्मण के प्रति भी दर्शन की व्याख्या कर सकता है। सत्य निम्नतम व्यक्ति से भी सीखा जा सकता है, चाहे वह किसी भी जाति अथवा सम्प्रदाय का हो।

प्राचीनतम मुसलमान इतिहासकार फरिश्ता के प्रमाण से जब मुसलमान पहले पहल यहाँ आए, तो हिन्दुओं की संख्या साठ करोड़ थी। अब हम बीस करोड़ हैं। और फिर हिन्दू धर्म में से जो एक व्यक्ति बाहर जाता है उससे एक व्यक्ति केवल कम ही नहीं होता, वरन् एक शत्रु भी बढ़ता है।

फिर जो हिन्दू मुसलमान अथवा ईसाई बने हैं, उनमें से अधिकतर या तो तलवार के भय से बने हैं या जो इस प्रकार बने हैं, उनके वंशज हैं, इन लोगों पर किसी प्रकार की अयोग्यता आरोपित करना स्पष्ट ही अन्याय होगा। जन्मतः परामतावलम्बियों के तो समूहों-के-समूह अतीत में हिन्दू धर्म में लिए गए हैं और यह उपक्रम आज भी चल रहा है।

मेरी अपनी राय में, यह विधान न केवल आदिम जातियों, सीमान्त के राष्ट्रों और मुसलमानी विजय से पहले के लगभग सभी विजेताओं पर लागू होता है, वरन् उन जातियों के लिए भी सत्य है, जिनकी पुराणों में विशेष प्रकार से उत्पत्ति बताई गई है। मैं समझता हूँ कि वे लोग बाहर के थे और इस प्रकार स्वीकृत कर लिए गए।

निश्चय ही प्रायश्चित का अनुष्ठान अपनी इच्छा से धर्म-परिवर्तन करनेवालों के अपने मातृधर्म में लौटने के लिए उपयुक्त है; पर उन लोगों के लिए जो विजय के द्वारा जैसे कि कश्मीर और नेपाल में-हमसे अलग कर दिये गए हैं, अथवा उन नये लोगों के लिए जो हममें सम्मिलित होना चाहते हैं, किसी प्रकार के प्रायश्चित की व्यवस्था नहीं करनी चाहिए।

हिन्दू धर्म भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों या सिद्धान्तों पर विश्वास करने के लिए संघर्ष और प्रयत्न में निहित नहीं है, वरन् वह साक्षात्कार है, वह केवल विश्वास कर लेना नहीं है, वह होना और बनना है।

❑

प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है।

बाह्य एवं अन्तः प्रकृति को वशीभूत करके स्वयं के इस अन्तर्निहित ब्रह्मस्वरूप को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

कर्म, उपासना, मनःसंयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक, एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपने ब्रह्मभाव को व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ।

बस, यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान-पद्धति, शास्त्र, मन्दिर अथवा अन्य बाह्य क्रियाकलाप तो उसके गौण अंग-प्रत्यंग मात्र हैं।

–स्वामी विवेकानन्द

स्वामी अद्भुतानन्द की दृष्टि में

श्री श्रीमाँ सारदादेवी

–स्वामी अद्भुतानन्दजी महाराज

(उद्बोधन कार्यालय, कोलकाता द्वारा प्रकाशित 'सत् कथा' नामक पुस्तक से साभार संकलित एवं अनूदित । अनुवादक हैं रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर के सचिव, स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज–सं०) ।

बेलूड़ मठ होने के बाद ही विवेकानन्द भाई ने श्री श्रीमाँ की पदधूलि लाकर स्थापित की। आज भी उनकी पूजा बेलुड़ मठ में होती है; और मठ जितने दिन रहेगा, उतने दिन पूजा होगी। माँ क्या थीं; केवल विवेकानन्द भाई ने ही समझा था। वे स्वयं लक्ष्मी हैं; इसे और किसी ने नहीं समझा। कहूँ भी किसे ? उनकी कृपा को समझने के लिए काफी तपस्या की आवश्यकता है। तुमलोग केवल मुँह से बोलते हो, 'माँ को मानता हूँ'। उनको मानने के लिए तपस्या की आवश्यकता है, तब उनकी कृपा होती है। उस कृपा के द्वारा ही उनको समझा जा सकता है। तब 'मैं मानता हूँ' यह कहना सार्थक होता है। उनको मानना क्या मुँह बोली बात है ?

बेईमान मत बनो। तुमलोग क्षुद्र जीव, माँ पर विश्वास, श्रद्धा, भक्ति, कुछ भी नहीं, केवल मुँह से 'माँ' 'माँ' करते हो ! ऐसी मातृभक्ति मैं नहीं चाहता।

मैं माँ की बात इधर-उधर नहीं बोलता, ठाकुर और विवेकानन्द भाई की ही बात बोलता हूँ। सबलोग समझेंगे नहीं, वरन् उल्टा समझेंगे, इसी कारण से। बेलुड़ में नीलाम्बर मुखर्जी के मकान में जब माँ रहती थीं, उस समय एक दिन योगीन महाराज के न रहने से उन्होंने मुझे बाजार जाने को कहा। मैंने कहा–'मेरे द्वारा ये सब नहीं होगा। तुमलोगों का हंगामा मैं नहीं सम्हाल सकूँगा, जाता हूँ, योगीन को बुला देता हूँ।' माँ ने कहा, 'तुझे जाने की आवश्यकता नहीं, रहने दे।' इस प्रकार मैं कितने ही प्रकार के उत्पात करता, किन्तु माँ कभी भी नाराज नहीं होती थीं। माँ में कितनी सहनशीलता थी, उसकी कोई तुलना नहीं। लोग इतना तंग करते, किन्तु माँ कभी भी क्षुब्ध नहीं होती थीं।

पूछते हो, मैं माँ को क्या मानता हूँ ? वे हैं माँ लक्ष्मी, और फिर कभी हैं सीता।

माँ को अपना आदर्श बनाओ, मेरे पास आने से क्या होगा ? साक्षात् माँ विराजमान हैं। मैं उनको जानने के लिए यहाँ बैठा हुआ हूँ। तुम बहुत भाग्यशाली हो, जो तुमने माँ से उपदेश पाया है। माँ के समान वैराग्य क्या है ?

माँ की बात और क्या कहूँ ? माँ सब जानती हैं। दक्षिणेश्वर की मेरी वह माँ ! माँ की कृपा की क्या कोई तुलना है ? माँ क्या हमसे कुछ आशा करती हैं ? कोई आशा नहीं, केवल इतनी ही उनकी अहैतुकी कृपा–यदि सुबह-शाम कोई भगवान् का नाम ले सके एवं पवित्रता से जीवन बिता सके–इसीलिए स्थान देती है। इस लड़के को देखते हो, बात भी करना नहीं जानता, कहाँ घर है, वह भी ठीक नहीं, उनपर भी उन्होंने कृपा की ।

मैं माँ को पत्र क्यों नहीं देता, जानते हो ? माँ मेरा भूत-भविष्य सब जानती हैं। उन्हें दिखावे के लिए पत्र लिखने से क्या होगा ? जो कुछ नहीं समझता है, उसे ही पत्र देना चाहिए। जो मेरा भूत-भविष्य सब जानती हैं, उन्हें दिखावे के लिए पत्र लिखने से क्या होगा ? जो कुछ भी नहीं समझता है, उसे ही पत्र देना चाहिए। जो मेरा भूत-भविष्य सब जानती हैं, उन्हें पत्र देने की क्या आवश्यकता हैं ? ❑

ध्यान, जप सब करना चाहिए जिससे मन का मैल दूर हो। पूजा, जप, ध्यान यह सब करना चाहिए। जैसे फूल के हिलाने-डुलाने से सुगन्ध का अनुभव होता है, चन्दन के घिसने से सुगन्ध निकलती है, उसी प्रकार भगवत् तत्त्व चिन्तन करते रहने से तत्त्व ज्ञान का उदय होता है। यदि वासना रहित हो सको तो वह इसी क्षण हो जाएगा।

–श्री श्री सारदा देवी

नारी जाति का आदर्श-श्रीमाँ सारदा देवी

ब्रह्मलीन स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज

10वें महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

[प्रस्तुत लेख रामकृष्ण मठ, मद्रास द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'The spiritual Ideals For the Present Age' में छपे लेख 'The Holy mother—The Ideal of Womanhood' का हिन्दी अनुवाद है। इसे छापने की अनुमति के लिए हम प्रकाशक के आभारी हैं। अनुवादक हैं रामकृष्ण मिशन, पोरबन्दर के सचिव स्वामी निखिलेश्वरानन्द]

श्रीमाँ सारदा देवी का जीवन उन सभी बातों से रहित है: जिन्हें हम वर्तमान मापदण्डों के अनुसार महान् कहते हैं। इन मापदण्डों के अनुसार विचार करने पर वे. दैनन्दिन गृहकार्य में निमग्न एक साधारण सी महिला प्रतीत होती हैं। उनका जीवन अत्यंत सादगीपूर्ण था और उन सभी घटनाओं से एवं कार्यों से रहित था, जो किसी का ध्यान आकर्षित करते हैं। कार्य की उत्तेजना में निमग्न रहने से हमलोगों के द्वारा एक सरल एवं आडम्बरहीन जीवन के महत्त्व की उपेक्षा करना स्वाभाविक है। उनके बचपन के कई साथी, जिनको अनेक लोगों ने देखा है, कहते थे—'हमलोग बचपन से ही उनके साथ रहते थे, उनके साथ खेलते थे, उनके साथ घनिष्ठतापूर्वक मिलते थे, किन्तु हमलोगों ने उनमें अतिस्वाभाविक कुछ भी नहीं देखा, आज इतने सारे भक्तों को उनके पास आते देख कर हमें आश्चर्य होता है। अब तो एक मन्दिर बन गया है, जिसमें उनकी देवी के रूप में प्रतिष्ठा की गयी है, और भी न जाने क्या क्या हो रहा है। कौन जानता है, इस सब का अर्थ क्या है ?' फिर, कुछ लोगों ने कहा है—'जब हम उनको देखने गये, तब उन्हें एक लम्बा घूंघट डाल, परिवार की एक लज्जाशील वधू के समान बैठा पाया। हमने उनमें कोई भी दैवी लक्षण नहीं पाया।'

स्वामी सारदानन्द जी ने, जिनको स्वामी योगानन्द जी के निधन के बाद श्रीमाँ की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, एकबार कहा था-'श्रीरामकृष्णदेव की महानता का कुछ आभास तो मिल जाता था, किन्तु इस महिला को तो हम बिल्कुल नहीं समझ सकते। उन्होंने अपने इर्द-गिर्द माया का ऐसा मोटा पर्दा डाल रखा है, कि कोई भी उसके आरपार नहीं देख सकता और उनकी महानता की झलक तक नहीं पा सकता।' एक महान् सन्त का गीत स्मरण हो आता है—'हे माँ, तुम कौन हो और तुम क्या हो, कोई नहीं जानता, लोग तुम्हारा भिन्न-भिन्न रूपों में वर्णन करते हैं।' यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि वे फिर कहते हैं - 'हे माँ, यदि तुम स्वयं को प्रकट न करो तो तुम्हें कौन जान सकता है ?'

एक बार स्वामी प्रेमानन्दजी ने किसी को लिखा था—'श्रीमाँ को कौन जानता है ? कौन उनको जान सकता है ? तुमने सीता, सावित्री और श्रीराधा जैसी महान् नारियों के बारे में सुना है, किन्तु श्रीमाँ ने उन सब का अतिक्रमण कर दिया है। उनमें ऐश्वर्य का कुछ भी दिखावा नहीं है। श्रीरामकृष्ण में कम से कम विद्या का ऐश्वर्य तो अवश्य अभिव्यक्त होता था, और वे मुहुर्मुहः समाधि में चले जाते थे। किन्तु श्रीमाँ में तो इतनी महानता भी अभिव्यक्त नहीं होती! कितना महान् होगा वह व्यक्तित्व, जो अपनी शक्तियों को इस प्रकार नियंत्रण में रख सके ! देखते नहीं, सैकड़ों और हजारों की संख्या में लोग उनकी ओर जा रहे हैं ? वे असीम शक्ति एवं असीम सौम्यता को धारण करती हैं। क्या तुमने ध्यान नहीं दिया। कि राजराजेश्वरी होकर भी वे किस प्रकार जयरामबाटी में एक भिखारिन का अभिनय कर रही हैं—घर में झाड़ू दे रही हैं, बर्तन माँज रही हैं, चावल चुन रही हैं, यहाँ तक कि भक्तों की जूठी पत्तलें भी उठा रही हैं। श्रीरामकृष्ण को कैन्सर की बीमारी ने भक्तों को एकत्र होकर संघबद्ध होने में सहायता की थी, और श्रीमाँ जयराम बाटी में इन सब कठिनाइयों को झेल रही हैं—गृहस्थों के लिए एक आदर्श स्थापित करने के लिए। क्या धैर्य, क्या करुणा और उससे भी बढ़कर क्या ही नम्रता ?'

जब श्रीमाँ रामेश्वरम् एवं दक्षिण भारत के अन्य तीर्थस्थानों के भ्रमण के दौरान मद्रास में थीं, तब मद्रास मठ में कई मित्र तथा भक्तगण स्वामी रामकृष्णानन्द जी के पास आकर पूछते थे कि क्या श्रीमाँ भाषण देनेवाली हैं। उनके पास महानता को नापने का एकमात्र

मापदण्ड था-पाण्डित्य। उनलोगों ने श्रीमती बीसेन्ट को सुना था, जो श्रोताओं को अपनी वाग्मिता से मुग्ध कर सकती थीं, इसलिए उन्होंने श्रीमाँ से भी इस प्रकार के भाषण की आशा की थी, किन्तु जब स्वामी रामकृष्णानन्दजी ने नकारात्मक उत्तर दिया, तब वे निराश होकर लौट गये। अफसोस ! उन्होंने एक महान् अवसर खो दिया। यदि वे कुछ छणों के लिए भी श्रीमाँ के चरणतलों बैठते, तो उनको प्रचुर लाभ होता।

हम शास्त्रों में पढ़ते हैं कि जब कोई व्यक्ति समाधि या अतिचेतन अवस्था से साधारण अवस्था में लौट आता है, तब द्वैत का संसार फिर से उसके समक्ष दृश्यमान होने पर भी, संसार उसे आकर्षित नहीं करता, क्योंकि उसने उसकी निरर्थकता का अनुभव कर लिया है। श्रीमाँ की उपस्थिति में कुछ क्षण बिताने पर मानो इसी अनुभव की एक झलक मिलती थी। आह ! उन चरणतलों में बैठने का क्या ही आनन्ददायक अनुभव था, उन माँ के चरणतलों, जो माँ करुणा, स्नेह एवं नम्रता की जीवन्त विग्रह थीं, जिनके नेत्रों में मानवता के दुःखों से व्यथित हृदय झलकता था, जिनका स्नेह सन्त एवं पापी में कोई अन्तर नहीं जानता था, और जो ऐसी पवित्र आभा बिखेरती थीं, जिसकी थाह पाना संभव नहीं था, किन्तु जिसका उपभोग करने में ही परम सन्तोष का अनुभव होता था। जिन्होंने भी उस आध्यात्मिक वातावरण में साँस ली, वे जब बाहर आये तो उन्होंने पाया कि संसार की भोगवासनाओं के प्रति उनका आकर्षण-उनका जड़-मूल रोग काफी हद तक दूर हो गया है। संसार अब फीका लगता था। जीवन अब दिशाहीन भटकना नहीं था, किन्तु मानो उसका एक उद्देश्य था-एक मूल्य था। जो जीव सोया हुआ था, वह जग गया और उसने अनन्त की सुदूर किन्तु मधुर पुकार सुनी, और उसे पाने के लिए व्याकुल हो उठा। क्या ही आश्चर्यजनक रूपान्तर !

सारदामणि देवी जब मात्र पाँच वर्ष की थीं, तभी श्रीरामकृष्णदेव से उनका विवाह हुआ था। विवाह उस समय हुआ जब श्रीरामकृष्णदेव को उनके रिश्तेदारों द्वारा दक्षिणेश्वर से कामारपुकुर लाया गया था। उन्होंने श्रीरामकृष्णदेव की भगवद्-विह्वलता की अवस्था को तथा उसके फलस्वरूप उनके विचित्र व्यवहार को भूल से पागलपन समझा था। विवाह के बाद श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर लौट गये तथा पुनः अपनी कठोर साधना में पुनः लीन हो गये, जो बारह वर्षों तक चली। इस अवधि में उनका दो बार कामारपुकुर आगमन हुआ था, और इन दोनों बार छोटी सारदा भी अपने पितृगृह जयरामबाटी से उनसे भेंट करने आयी थीं। किन्तु संसार के समक्ष उस दाम्पत्य जीवन की महान लीला तो तभी प्रारंभ हुई, जब वे दक्षिणेश्वर में रहने के लिए आयीं।

सारदादेवी ने सुदूर गाँव में स्थित अपने गृह में रहते हुए, श्रीरामकृष्णदेव की शारीरिक अस्वस्थता के बारे में सुना था, और उनके पास रहकर सेवा करने के लिए वे लालायित थीं। उनकी भावनाओं को समझकर उनके पिता उन्हें दक्षिणेश्वर ले गये। उनलोगों को ६० मील का रास्ता पैदल ही तय करना था। रास्ते में सारदादेवी बीमार पड़ गयीं, क्योंकि वे इस प्रकार की कठोरता से अभ्यस्त नहीं थीं, और जब वे दक्षिणेश्वर पहुँची, तब भी रोग से आक्रान्त थीं। वे जब पहुँचीं, तब रात्रि के नौ बज गये थे। उनके दल के अन्य सदस्य श्रीरामकृष्ण देव की माँ से मिलने गये, जो नौबत खाने में रहती थीं, किन्तु सारदादेवी सीधे श्रीरामकृष्ण देव के कमरे में गयीं। क्या ही आदर-सत्कार पाया एक व्यथित पत्नी ने अपने पति के पास जो तपस्वियों से भी बढ़कर तपस्वी थे ! 'आह तुम अब आयी।' उन्होंने कहा 'यदि आज मेरा मथुर रहता, तो तुम्हारी सब प्रकार से देख-भाल करता।'

श्रीरामकृष्णदेव के दर्शन के बाद, सारदादेवी अपनी सास के पास नौबत खाने में जाना चाहती थीं, किन्तु श्रीरामकृष्णदेव ने कहा, 'नहीं, नहीं, यहीं रहो। वहाँ डॉक्टर को तुम्हारा उपचार करने में असुविधा होगी। इसलिए सारदा देवी एक अन्य महिला के साथ उन्हीं के कमरे में ठहर गयीं। दूसरे दिन एक डॉक्टर को बुलवाया गया और कुछ ही दिनों में वे स्वस्थ हो उठीं तथा अपनी सास के पास रहने के लिए चली गयीं। श्रीरामकृष्णदेव के ऐसे आदर-सत्कार से उनकी सभी दुश्चिन्ताएँ दूर हो गयीं और उन्होंने दक्षिणेश्वर में रहकर श्रीरामकृष्णदेव तथा उनकी माँ की सेवा करने का निश्चय किया ।

धीरे-धीरे उस दाम्पत्य जीवन की महान् लीला का सूत्रपात हुआ। श्रीरामकृष्णदेव के गुरु तोतापुरी जी ने एकबार कहा था-'ब्रह्मज्ञान में प्रतिष्ठित व्यक्ति के लिए अपनी पत्नी से कोई खतरा नहीं होता, क्योंकि

ठीक ठीक ब्रह्मज्ञानी अद्वैत ज्ञान में प्रतिष्ठित रहने से पुरुष और स्त्री में कोई अन्तर नहीं देखता। श्रीरामकृष्णदेव अपनी परीक्षा लेना चाहते थे, अतः उन्होंने अपनी पत्नी को अपने साथ रखकर उन्हें मन भरकर अपनी सेवा करने का मौका दिया। यहाँ तक कि उन्हें अपने साथ एक ही बिस्तर पर सोने के लिए भी अनुमति दी। किन्तु पवित्रता के मार्ग से उनका मन कभी नहीं डिगा।

एक दिन श्रीमाँ ने उनको पूछा–'आप मुझे किस दृष्टि से देखते हैं ?' श्रीरामकृष्ण देव ने उत्तर दिया– 'मैं तुम्हें जगन्माता का ही स्वरूप समझता हूँ।' उनके इस विलक्षण दाम्पत्य जीवन में श्रीमाँ का भी योगदान था। पवित्रता में श्रीरामकृष्णदेव के समान थीं, इसीलिए यह संभव हो पाया था। दक्षिणेश्वर में उनके साथ रहते समय प्रारंभ के दिनों में श्रीरामकृष्णदेव ने उनसे पूछा था–'क्या तुम मुझे माया में खींचने आयी हो ?' 'मैं तो आपकी साधना में सहायता करने के लिए आयी हूँ।' उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की थीं 'चन्द्रमा में भी काले धब्बे हैं, किन्तु मेरे मन में कुछ भी कालिमा न रहे। मुझे उन श्वेत पुष्पों के समान शुद्ध कर दो।'

श्रीरामकृष्णदेव ने श्रीमाँ की परम-पवित्रता का स्पष्ट अनुभव किया था, और वे अपने आध्यात्मिक जीवन में उनका योगदान स्वीकार करते थे । बाद में अपने शिष्यों को उन्होंने कहा था-'यदि वह इतनी पवित्र न होती, तो कौन जानता है, मैं अपने पर संयम रख पाता कि नहीं !' एक शिष्य ने सच ही गाया है- 'जिनका चरित्र तथा जिनका जीवन पवित्र था, जो पवित्रता स्वरूपणी थीं-उनको हमारे प्रणाम।' इस अकल्पनीय पवित्र दाम्पत्य जीवन की पराकाष्ठा में श्रीरामकृष्णदेव ने श्रीमाँ को देवी के आसन पर बैठाया और पारम्परिक विधि से जगन्माता के रूप में उनकी पूजा की। यह षोडशी पूजा उनमें अपने में दिव्यभाव से अपूर्व विकास का, अपनी पत्नी में जगन्माता की प्रतिष्ठा का तथा आत्मा की देह पर विजय का लक्षण था ।

श्रीमाँ ने अपना सारा जीवन व्यक्तिगत असुविधाओं को बिल्कुल भूलकर, संपूर्ण हृदय से श्रीरामकृष्णदेव की निरन्तर सेवा में लगा दिया था। यह सेवा ही उनके जीवन का सर्वस्व थी। यह सेवा कर्तव्य के बोध से प्रेरित नहीं थी, वरन् उनके प्रेम तथा श्रद्धा के फलस्वरूप थी। इसका अंत सिर्फ बाहरी सेवा से ही नहीं हुआ, क्योंकि उन्होंने उनके जीवन के प्रमुख सिद्धान्त को ग्रहण करके उसे अपना स्वयं का अंग बना लिया था। उनकी भावनाएँ और आकांक्षाएँ श्रीरामकृष्णदेव के ही आदर्श से ओतप्रोत थीं और वे उनके जीवन के लक्ष्य को पूरा करने में सच्ची सहायिका सिद्ध हुई। श्रीरामकृष्ण देव के एक शिष्य ने उनके बारे में ठीक ही कहा है– 'जिनके प्राण श्रीरामकृष्ण देव को समर्पित हैं, जिनको उनका नाम-श्रवण अतिप्रिय है, तथा जो उनके भावों से ओत-प्रोत हैं–मैं उनको बारम्बार प्रणाम करता हूँ।' श्रीरामकृष्णदेव के निधन के बाद भी उनका जीवन उनकी वेदी पर निरन्तर आहूति का जीवन था। वे सब समय उनके जीवनव्रत को पूरा करने में निमग्न थीं, जिसके लिए वे उनको संसार में छोड़ गये थे।

कोमलता ही पति-पत्नी के सम्बन्ध का आधार होती है और श्रीरामकृष्णदेव का अपनी पत्नी के साथ सम्बन्ध इस दृष्टि से आदर्शस्वरूप था। वे सब समय सावधान रहते थे कि कहीं उनकी भावनाओं को ठेस न पहुँचे। उनकी इच्छाओं की ओर से सर्वोपरि विशेष ध्यान देते थे। उनके प्रति उनका दृष्टिकोण अत्यंत सम्मान जनक था, इतना अधिक कि जब एकबार उनके रिश्तेदारों ने उनसे असम्मानजनक वर्ताव किया था, तब उन्होंने कहा था–'मैं एक ऐसे पति से ब्याही थी, जिन्होंने मुझे कभी भी कटुवचन नहीं कहे और कभी मेरी भावनाओं को ठेस नहीं पहुँचायी। श्रीरामकृष्णदेव की सब समय, सभी प्रकार से यह चेष्टा रहती थी कि श्रीमाँ इस बात की अनुभूति करें कि वे उनके हृदय के कितनी निकट हैं। उन्होंने श्रीमाँ के लिए सोने के कुछ गहने भी बनवा दिये थे। वे इस बात का विशेष ध्यान रखते थे कि कोई उनका अपमान न करे, क्योंकि वे जानते थे कि यदि वे सचमुच में नाराज हो गयीं तो अपमान करने वाले की हानि होगी। वे कहा करते थे- इस देह में (यानी उनकी देह में) जो अवस्थित हैं यदि वे नाराज हो जायँ तब तो रक्षा हो सकती है, किन्तु उनके (श्रीमाँ के) भीतर जो अवस्थित हैं, वे यदि नाराज हो जायँ तो कोई तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता।

श्रीरामकृष्णदेव के लिए भक्तों द्वारा लायी हुई 'मिठाइयों-फलों में से उनके लिए कुछ रखकर बाकी सब श्रीमाँ मुक्त हस्त से वितरण कर देती थीं। एकबार उन्होंने कहा–''यदि तुम इस प्रकार खर्च करोगी तो

गृहस्थी कैसे चलेगी ?' इन शब्दों से उनको चोट पहुँची, मानो उनके मातृत्व में हस्तक्षेप हुआ हो, और तुरन्त वहाँ से चली गयीं। श्रीरामकृष्णदेव ने, परिस्थिति को समझ लिया और अपने भतीजे रामलाल से कहा– 'जाकर अपनी चाची को शान्त करो। यदि वह नाराज हो जायगी तो सर्वनाश हो जायगा।' यह पारस्परिक आदर ही उनके दाम्पत्य जीवन का वैशिष्ट्य था।

श्रीरामकृष्णदेव के निधन के बाद श्रीमाँ ने अपने को जिस पारिवारिक परिवेश में पाया उसमें उनकी महानता और भी अधिक प्रकट हुई। बहुधा वे अपने मायके जयरामबाटी में रहतीं थी, और परिवार की ज्येष्ठ कन्या होने के नाते अपने छोटे भाइयों के पालन पोषण करने की तथा अपनी वृद्ध माता की देख-रेख करने की जिम्मेदारी उन्हीं पर पड़ी। इनमें से कुछ भाई घोर संसारी थे, एवं पूरे जीवनभर ये लोग उनकी परेशानी का कारण बने रहे। इसके उपरान्त उनकी पितृहीन भतीजी तथा उसकी पगली माँ के लिए भी उन्हें बड़ा कष्ट झेलना पड़ा था। किन्तु उन्होंने सबकुछ सहन किया तथा उनका भरण-पोषण किया। साधारण माँ भी, जो अपने बच्चों की ओर इतना स्नेह रखती है, सुदूर भविष्य में उनसे प्रतिफल की आशा रखती है। किन्तु श्रीमाँ का अपने रिश्तेदारों के प्रति स्नेह, जो उनको कुछ नहीं दे सकते थे, वरन प्राय: जो उनके प्रति अकृतज्ञ थे, अनुपम था। इसी ने उनकी आध्यात्मिक महत्ता तथा उनके सौम्य मातृत्व को उभार दिया था।

उनका यही मातृ-स्नेह अपने शिष्यों के प्रति भी परिलक्षित होता था। इसी मातृ-स्नेह के कारण ही वे किसी को भी, यहाँ तक कि निकृष्टतम पापी को भी आध्यात्मिक सहायता देने से इनकार नहीं कर सकती थीं। पानेवाली की योग्यता को बिना देखे ही यह सहायता दी जाती थी, क्योंकि इसके पीछे एकमात्र हेतु उनका मातृस्नेह था। वे कहतीं–'पापियों और पीड़ितों की जिम्मेदारी और कौन वहन करेगा ?' सब की माँ होने के नाते, बिना किसी बदले की आशा के उन्होंने मुक्तहस्त से सभी को वितरण किया ।

इन दोनों महान् आत्माओं के दाम्पत्य जीवन का हमने संक्षेप में वर्णन किया है। क्या आधुनिक युग के लिए इसका कोई अर्थ है ? अवश्य है, किन्तु इसका ठीक-ठीक महत्त्व जानने के लिए, पहले हमें भारत की महान् परम्पराओं को समझना होगा।

पूरे संसार में, स्त्रियों के दृष्टिकोण में एक महान परिवर्तन आ रहा है। पश्चिम में स्त्रियों ने इस प्राचीन मान्यता के खंडन का प्रयत्न किया है कि पुरुष तथा स्त्री भिन्न प्रकार से गठित हैं और इसलिए सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन में उनके प्रकार्य भी भिन्न-भिन्न होने चाहिए। वे लोग पुरुषों के साथ जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलतापूर्वक स्पर्धा कर रही हैं, यद्यपि इसने उनको अधिक सुखी बनाया है कि नहीं यह संदेहास्पद है। भारतीय नारियाँ भी अपना दृष्टिकोण बदल रही हैं और पारिवारिक जीवन से, जो गृहकार्य शताब्दियों से उनका मुख्य कार्य रहा हैं। वे पूर्णतर जीवन जीने के लिए स्वतन्त्रता चाहती हैं। नारियों के इस विद्रोह के लिए पर्याप्त औचित्य हैं। हमारे समाज में उनकी अवस्था अभीष्ट नहीं है और यह कहना अनावश्यक है कि राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उनके सम्मिलित होने का स्वागत होना चाहिए। किन्तु इस नये उद्यम की उत्तेजना में हमारी नारियों को उनमें जो कुछ श्रेष्ठ है, उसे खो नहीं देना चाहिए। इसी को, हमारी प्राचीन विरासत को, दृढ़ करने के लिए ही दक्षिणेश्वर में यह महान् लीला खेली गयी।

भारतीय संस्कृति का सार है–जीवों की एकता को पहचानना तथा इस बात को स्वीकारना कि यह एकता का बोध ही सर्वोत्तम वस्तु है एवं सच्ची आत्माभिव्यक्ति है। हमारी सामाजिक संस्थाओं के आधार हैं–इस तथ्य का स्वीकार तथा इसे अनुभव करने के साधन। भारतवर्ष ने जीवन के लक्ष्य को बहुत पूर्व समझ लिया था एवं उसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु समाज की रचना की थी। इस समाज-व्यवस्था में भारतवर्ष ने यह नहीं भूला था कि सब स्त्री-पुरुष विभिन्न आध्यात्मिक अवस्थाओं में हैं। अत: सभी पर उच्चतम आदर्श को थोपने से समाज में अव्यवस्था व्याप्त हो जाएगी। इसीलिए भारतवर्ष ने समाज का गठन एक क्रमिक शृंखला के रूप में किया था, जिसमें आध्यात्मिक रूप से अपरिपक्व लोगों के लिए कुछ सुखभोग का भी प्रावधान था, किन्तु साथ ही साथ उसने इस बात का ध्यान रखा था कि वे अपना लक्ष्य न भूल जायें। जीवन इस प्रकार नियमबद्ध किया गया था कि सभी लोग विभिन्न अवस्थाओं से तथा अनुभवों से गुजरते हुए अंतिम लक्ष्य तक पहुँच जायें।

पूर्णता की ओर अग्रसर होते हुए जीव के लिए वैवाहिक जीवन प्रगति का एक चरण है। इस अवस्था

का अतिक्रमण करने के लिए इस अवस्था से गुजरना पड़ता है। विवाह आत्मा के मिलन का प्रतीक है, न कि केवल दैहिक मिलन। इसीलिए 'वैवाहिक बन्धन' इतना पवित्र है। शारीरिक प्रेम मंदिर का केवल बाहरी भाग है, भीतरी भाग नहीं, और मंदिर का गर्भगृह तो कतई नहीं; किन्तु भली भाँति नियमित करने पर लोगों को देवता के ठीक सामने खड़ा कर देता है। अधिकांश लोगों के लिए यह सत्य है किन्तु कुछ ऐसे भी पवित्र जीव हैं जिनके लिए प्रारंभ से ही विवाह आत्मा का मिलन है; जिनके लिए किसी अन्य प्रकार का मिलन अकल्पनीय है, जैसा कि हम श्रीरामकृष्णदेव तथा श्रीमाँ सारदादेवी के सम्बन्ध में देखते हैं।

जैसे-जैसे मनुष्य आध्यात्मिक उन्नति करते हैं, उनकी प्रेम के सम्बन्ध में धारणा भी उन्नत होती है। जो प्रेम मनुष्य के भीतर भौतिक स्तर पर प्रजनन प्रवृत्ति के रूप में अभिव्यक्त होता है, वही प्रेम उच्च आदर्शों द्वारा परिचालित होने पर उसे आध्यात्मिक आलोक की ओर अग्रसर कर देता है। विवाह की पूर्णता भोग में नहीं अनुशासन एवं सेवा में है। इसका लक्ष्य जीवन की पूर्णता है, सुखभोग नहीं। जब सुखभोग का लक्ष्य जाता रहता है, तब विवाह चरित्र-निर्माण में सहायता करता है और उच्चतर आदर्शों को जन्म देता है। हिन्दू विवाह इन उच्चतर आदर्शों को प्राथमिकता देता है, रोमांसवादी दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करता। इन उच्च आदर्शों का पालन करने से एवं कर्तव्य कर्मों को करने में ही सच्चा सुख मिलता है, पार्थिव जीवन जीने से नहीं।

पति पत्नी आध्यात्मिक साथी हैं। दोनों एक दूसरे की सहायता करते हैं तथा चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर होते हैं। जिस प्रकार स्त्री को एक आदर्श पत्नी होने के लिए कहा जाता है, पुरुष को भी आदर्श पति होने को कहा जाता है। साँचा पहले से ही ठीक कर दिया जाता है, और पति-पत्नी उसके अनुसार अपने को ढालेंगे ऐसी उनसे आशा की जाती है। राम या सीता के समान होना वैवाहिक जीवन का आदर्श माना जाता है, और इसमें पति-पत्नी की खामियों को गंभीरता से नहीं लिया जाता, क्योंकि एक की असफलता का मतलब यह नहीं कि दूसरा आदर्श के लिए प्रयत्न नहीं करे। पत्नी अपने पति में ईश्वर को देखने का प्रयत्न करती है और उसके प्रति उसकी दैनिक सेवा, पूजा के सदृश ही होती है। पति के दोष उसकी दृष्टि में ओझल हो जाते हैं। पत्नी केवल पूजा का ही अधिकार चाहती है, बराबरी का नहीं। कितना अधिक से अधिक वह दे सकती है, इसी बात पर पत्नी की महानता निर्भर करती है। आदर्श यह नहीं है कि बिना प्रेम दिये प्रेम पाने की इच्छा करे, यह भी नहीं कि प्रेम देकर प्रेम पाने की इच्छा करे, किन्तु आदर्श है बिना प्रेम की आशा किये प्रेम करना। इस प्रकार हिन्दू पत्नी हरदम सीता तथा सावित्री के स्वप्न देखती है, जिन्होंने सब समय दिया और बदले में अपने लिए कुछ भी नहीं चाहा।

नारीत्व का यह आदर्श समाज द्वारा नारियों पर थोपी गयी दासता नहीं है, जैसा कि इन दिनों कुछ लोगों का विचार है; किन्तु यह दैहिक वासनाओं को परिशुद्ध करके आध्यात्मिक भावों में बदलने का एक उपाय है। किन्तु समाज की महानता इसी में है कि यह स्त्री तथा पुरुष जहाँ हैं, वहीं से आगे बढ़ने के लिए उनहें सहायता करता है तथा ऐहिक वस्तुओं के बारे में उनके दृष्टिकोण को बदलने को कहता है। इस प्रकार यह ऐहिक तथा पारमार्थिक बीच का भेद मिटा देता है तथा सभी वस्तुओं के बारे में उनके दृष्टिकोण को बदलने को कहता है। इस प्रकार यह ऐहिक तथा पारमार्थिक के बीच में भेद मिटा देता है तथा सभी वस्तुओं को पावन कर देता है। हम इस सत्य से अभिज्ञ हैं कि कुछ ऐसे चरम दृष्टान्त भी हैं, जो इस प्रकार के आदर्श का समर्थन नहीं करते; किन्तु इस सापेक्ष जगत में कुछ भी सम्पूर्ण नहीं है। जब हम एक सामाजिक आदर्श स्थापित करते हैं, तब इसकी परीक्षा 'अधिक से अधिक लोगों का अधिक से अधिक कल्याण' करने की इसकी क्षमता के आधार पर ही की जानी चाहिए। यदि यह आदर्श ऐसा कर सकता है तो उसे केवल इसलिए कचरा-पेटी में नहीं फेंका जा सकता कि वह कुछ असामान्य अवसरों पर लागू नहीं होता, कम से कम तब तक नहीं, जब तक उसे हटाने के लिए श्रेष्ठतर आदर्श हम नहीं खोज लेते, क्योंकि बिना आदर्श का जीवन हमें आदिम युग के मानव की अवस्था में वापस ले जाएगा। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं–

"जिन मूल भावों से हमारी विवाह-प्रथा का प्रचलन हुआ है, उनके ग्रहण करने से ही यथार्थ सभ्यता का संचार हो सकता है, किसी दूसरे उपाय से कदापि

नहीं। यदि हर एक स्त्री-पुरुष को जिस किसी पुरुष या स्त्री को पति अथवा पत्नी के रूप से ग्रहण करने की स्वाधीनता दी जाय, यदि व्यक्तिगत सुख, पाशव प्रकृति की परितृप्ति, समाज में बिना किसी बाधा के संचरित होती रहे, तो उसका फल अवश्य ही अशुभ होगा। इससे दुष्ट प्रकृति और असुर स्वभाव की सन्तान उत्पन्न होगी।''. हम प्राचीन महान् आदर्शों को भूल गये हैं। यह सच है कि हमलोग इस समय इन भावों को पूर्ण रूप से कार्य में परिणत नहीं कर सकते, यह भी सम्पूर्ण सत्य है कि हमलोगों ने इन सब महान् भावों में से कुछ को हास्यास्पद बना दिया है। ....किन्तु व्यावहारिक रूप में दोषों के आ जाने पर भी वह मूल तत्त्व बड़े ही महत्त्व का है; और यदि उसका कार्यान्वित होना सदोष है, यदि इसके लिए कोई खास तरीका नाकामयाब हुआ है, तो उस मूल तत्व को लेकर ऐसी चेष्टा करनी चाहिए जिसमें वह अच्छी तरह काम में आ सके। मूल तत्त्व के नष्ट करने की चेष्टा क्यों ? [विवेकानन्द साहित्य-पंचम खंड पृ० सं० २९८-२९१]

शास्त्रों के अनुसार मातृत्व की भावना नारियों को पवित्र बनाती है। इसी में उनके जीवन की पूर्णता है। क्यों ? जब नारी माँ बनती है तब उसकी भावनाएँ तथा संवेदनाएँ अधिक परिशुद्ध होती हैं। वह देहात्म बोध के दोष से क्रमश: मुक्त हो जाती है, और इस प्रकार आत्मानुभूति के चरम लक्ष्य की ओर एक बड़ा कदम रखती है। इसीलिए मातृत्व की भावना इतनी पवित्र है। भावात्मक संकट से बचने के लिए स्त्री-पुरुष के सामाजिक सम्बन्ध के बारे में हिन्दू संहिता सन्तानीय भाव का विधान करती है, जो इतना शुद्ध है। नारी स्वयं को माता के रूप में प्रकट करेगी, केवल रमणी के रूप में नहीं।

यद्यपि अधिकांश स्त्री-पुरुष स्वाभाविकतया विवाह कर माँ-बाप बनना अधिक पसन्द करते हैं; तथापि उनमें कुछ ऐसे भी अपवाद हैं, जिन्होंने आत्मा की पुकार को सुना है और जो त्याग का रास्ता अपनाना चाहते हैं। अनन्ताभिमुखी यात्रा में वे लोग नि:संग हो चलने का साहस करते हैं। ऐसी नारियों के लिए पत्नीत्व या मातृत्व के अनुभव से गुजरने की आवश्यकता नहीं है। नाम-रूप-लिंगहीन आत्मा की अनुभूति ही जीवन का चरम लक्ष्य है; और यह केवल अखण्ड ब्रह्मचर्य एवं पूर्ण वैराग्य के द्वारा ही संभव है। 'काम-कांचन' ही हमें बाँधता है, और यदि कोई मुक्त होना चाहे तो उसे इन दोनों का पूर्ण वर्जन करना होगा। हम 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' में पढ़ते हैं–'देखो, गृहस्थ का जीवन बिताने से मानसिक शक्ति का अनावश्यक व्यय होता है। यदि कोई संन्यास का जीवन अंगीकार करे तो इस क्षय की पूर्ति हो सकती है। –'काम-कांचन' ही आध्यात्मिक जीवन के विघ्न हैं। ये ही ईश्वर से व्यक्ति' को विमुख कर देते हैं।'

ऐसे जीवों पर समाज का कोई अधिकार नहीं है, तथा वे मातृत्व के कर्तव्य से मुक्त होते हैं। विना इस त्याग की भावना के आजादी के नाम पर मातृत्व के दायित्व से मुक्त होने का समर्थन हिन्दू समाज नहीं करता है, क्योंकि स्वतंत्रता के नाम पर स्वेच्छाचार को प्रश्रय देने वाले मतवाद का यह समर्थन नहीं करता। जो नारियाँ शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक रूप से सशक्त हैं, उन्हें समाज के प्रति अपना कर्तव्य निभाना है, या जैसा कि हिन्दू लोग कहते हैं, पैतृक ऋण को शोध करना है, मातृत्व के दायित्व से बचना नहीं है। नारी मातृत्व के कर्तव्य से तभी मुक्त होती है जब उसका प्रेम सभी सीमाओं को लांघकर सार्वभौमिक हो जाता है, ताकि वह अपना मातृस्नेह उन सभी पर ढाल सके जिन्हें इसकी आवश्यकता है, जैसा कि हम श्रीमाँ सारदादेवी के जीवन में पाते हैं। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं–''मेरे विचार से पूर्ण ब्रह्मचर्य के आदर्श को प्राप्त करने के लिए किसी भी जाति को मातृत्व के प्रति परम आदर की धारणा दृढ़ करनी चाहिए, और वह विवाह को अछेद्य एवं पवित्र धर्म-संस्कार मानने से हो सकती है। रोमन कैथोलिक ईसाई और हिन्दू विवाह को अछेद्य एवं पवित्र धर्मसंस्कार मानते हैं, इसलिए दोनों जातियों ने परमशक्तिमान महान् ब्रह्मचारी पुरुषों और स्त्रियों को उत्पन्न किया है। --इसलिए-- जब तक विवाह के पवित्र और महान् आदर्श का निर्माण न होगा, (परस्पर प्रेम और आकर्षण को छोड़कर) तब तक, मेरी समझ में नहीं आता कि वहाँ बड़े-बड़े संन्यासी और संन्यासिनियाँ कैसे हो सकती हैं। जैसा कि आप अब समझने लगी हैं कि जीवन का गौरव ब्रह्मचर्य है, उसी तरह जनता के लिए इस बड़े धर्म-संस्कार की आवश्यकता-जिससे कुछ शक्ति सम्पन्न आजीवन ब्रह्मचारियों की उत्पत्ति हो-मेरी भी समझ में

आने लगी है।'' [विवेकानन्द साहित्य–अष्टम खण्ड पृष्ठ संख्या ३९४-३९५]

श्रीमाँ का जीवन सभी के लिए-पत्नी, माँ एवं संन्यासिनी के लिए, आदर्श प्रस्तुत करता है, क्योंकि संन्यास जीवन की सारवस्तु-पवित्रता एवं वैराग्य की ज्वलन्त मूर्ति को, संन्यासिनी के अलावा क्या कहेंगे। भगिनी निवेदिता ने कहा है–'भारतीय नारी के आदर्श के सम्बन्ध में वे श्रीरामकृष्णदेव की अन्तिम बात थीं।' हम यह भी कह सकते हैं–'समस्त नारी जाति के आदर्श के सम्बन्ध में अंतिम बात थी', क्योंकि वे केवल भारतीय ही नहीं विश्वजनीन आदर्श का प्रतीक थी। सभी देशों में एवं सभी जातियों में इस प्रकार की नारियों का उद्भव अवश्यंभावी है, जहाँ नारी को नारीत्व का विकास करने के लिए सामाजिक परिस्थितियाँ अनुकूल हैं। सभी को अपने-अपने स्वधर्म का पालन करते हुए लक्ष्य की ओर अग्रसर होना होगा, क्योंकि गीता कहती है–'दूसरों के धर्म का यदि अच्छी तरह से पालन किया जाय तो भी वह भय देनेवाला है।' (गीता ३/३५)

अत: नारी का उद्देश्य एक आदर्श, अपूर्ण पुरुष न होकर एक पूर्ण स्त्री बनने का होना चाहिए, क्योंकि वह अपने से अन्य कुछ नहीं हो सकती। अत: नारी की पुरुषों के साथ स्पर्धा करने की चेष्टा जो उसके आत्मविश्वास के अभाव का प्रतीक है, उसके लिए एवं संसार के लिए हानिकारक है। नारी प्रत्येक देश की जीवनशक्ति है जिसे गलत मार्गों की ओर मोड़कर नष्ट नहीं किया जा सकता। हिन्दू धर्म शिव-शक्ति का यह सिद्धान्त स्वीकार करता है कि परम सत्य के दो पहलू हैं–दिव्य पुरुष एवं दिव्य प्रकृति। श्रीरामकृष्णदेव अध्यात्म रामायण से उद्धृत कर कहते हैं–'हे राम, जितने पुरुष हैं, वे सभी तुम हो और जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सीता हैं।'

परम तत्त्व के ये दो रूप समान नहीं हैं, किन्तु एक दूसरे के परिपूरक हैं, दोनों मिलकर सम्पूर्ण होते हैं। इस प्रकार पुरुष या स्त्री में कोई भी बड़ा नहीं है, दोनों बराबर हैं, यद्यपि दोनों भिन्न-भिन्न प्रकार से गठित हैं। पुरुष नारियों में इसी दिव्य प्रकृति का प्राकट्य देखना चाहते हैं। इसी प्रकार नारियाँ पुरुषों का सम्मान अर्जित कर सकेंगी, केवल बराबरी की स्पर्धा करने से नहीं; क्योंकि यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि हम दूसरों के उन गुणों की ही प्रशंसा करते हैं, जो हममें नहीं है। जब तक दिव्य प्रकृति का, शक्ति का, यह आदर्श पुन: प्रतिष्ठित नहीं होता, तब तक मानवजाति के लिए कोई आशा नहीं है। स्वामी विवेकानन्द जी ने स्वामी शिवानन्द जी को सन् १८९४ में लिखा था–'माँ के जीवन का विलक्षण महत्त्व तुमलोग अभी नहीं समझ सके हो–तुममें से एक भी नहीं। किन्तु धीरे-धीरे तुम जानोगे। शक्ति के बिना संसार का उद्धार नहीं हो सकता। क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सबसे अधिक बलहीन और पिछड़ा हुआ है ? इसका कारण यही है कि यहाँ शक्ति का निरादर होता है। उस अनुपम शक्ति को भारत में पुन: जाग्रत करने के लिए माँ का जन्म हुआ है।'

अपनी अशिक्षा के बावजूद भारतीय नारियों ने अभी तक इस महान् परम्परा को बचाये रखा है, जिसकी संसार को आज नि:सन्देह बहुत आवश्यकता है। श्रीमाँ ने अपने जीवन के द्वारा इस परम्परा को पुनरुज्जीवित किया है। हमारी माताओं तथा बहनों को पाश्चात्य आदर्शों ने आधुनिक पाश्चात्य देशों में भी विशृंखलता की सृष्टि कर दी है। श्रीमाँ ने रास्ता दिखा दिया है, अब हमारी नारियों का कर्तव्य है कि 'अपने स्वयं के एवं जगत् के कल्याण के लिए' उनके कदमों का अनुसरण करें। ❑

प्रश्न : मुझ पर ईश्वर की कृपा कब होगी ?

उत्तर : ऐसा कोई नियम नहीं है कि अगर कोई तपस्या कर रहा है तो उस पर ईश्वर की कृपा होगी ही। प्राचीन काल में ऋषियों ने हजारो वर्ष तक शीर्षासन करते हुए धूनी जलाकर तपस्या की थी। इतना होते हुए भी उनमें से कुछ को ही ईश्वर की कृपा प्राप्त हुई ।

प्रश्न : माँ, मैंने इतना अधिक जप-तप किया है, पर मुझे तो कुछ भी नहीं मिला !

उत्तर : भगवान् कोई मछली या तरकारी नहीं हैं बेटा, जो तुम उन्हें दाम चुकाकर खरीद लो।

–श्रीमाँ सारदादेवी

जीवन की सीख

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज

(श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज, अध्यक्ष रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन, बेलुड मठ की पुस्तक WHAT LIFE HAS TAUGHT ME के कुछ अंशों का अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है। अनुवादक हैं—डॉ० केदार नाथ लाभ।)

स्वामी विवेकानन्द का मुझ पर प्रभाव

जब हम सब लोग अँग्रेजों के गुलाम थे तब भी, भारत के ज्योतिर्मय भविष्य के विषय में स्वामी विवेकानन्द के दूरदर्शितापूर्ण विचारों तथा आगत शताब्दियों में भारत तथा भारत के बाहर के देशों में वेदान्त के शक्तिदायी, एकीकरणकारी एवं सार्वजनीन सत्यों के व्यापक प्रसार के सम्बन्ध में उनके (स्वामी विवेकानन्द के) दृढ़ विचारों का अध्ययन करना परम प्रेरणादायी था। उन्होंने आगामी शताब्दियों में पूर्वी एवं पश्चिमी संस्कृतियों का संश्लेषण कर पहले भारत तथा बाद में विदेशों में एक वेदान्ती समाज और सभ्यता का विकास करने वाली एक योजना हमारे समक्ष रखी है। हमारा वेदान्त-दर्शन उत्कृष्ट है; परन्तु हमारे समाज पर उसका कोई प्रभाव नहीं है। २० अगस्त १८९३ को अपने मद्रास (अब चेन्नई) के एक भक्त आलासिंगा को अमेरिका से लिखित अपने एक पत्र में स्वामीजी ने लिखा था (विवेकानन्द साहित्य, प्रथम खंड, पृ० ४०३) :

''पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिन्दू धर्म के समान गरीबों और नीच जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो।''

और कुछ ही महीनों बाद लाहौर में वेदान्त के विषय पर दिये गये अपने व्याख्यान में उन्होंने गर्जना की थी : 'अपने चरित्र का यह दाग मिटा दो।' मद्रास के अपने एक व्याख्यान 'हमारा प्रस्तुत कार्य' (विवेकानन्द साहित्य, पंचम खंड, पृष्ठ १६५) में उन्होंने अपने देशवासियों को यह अनुभव करने को प्रबोधित किया कि आधुनिक भारत यूनान-रोम तथा यूरोपीय सांस्कृतिक मूल्यों तथा प्राचीन परीक्षित भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की मिलनभूमि होगा। ''आज वही प्राचीन यूनान तथा प्राचीन हिन्दू भारतभूमि पर मिल रहे हैं।''

इस सन्दर्भ में २४ जनवरी, १८९४ को अमेरिका से अपने मद्रासी शिष्यों को लिखित एक पत्र के दो अनुच्छेदों को उद्धृत करना प्रासंगिक होगा (विवेकानन्द साहित्य, द्वितीय खंड पृ० ३२१)

''जीवन में मेरी सर्वोच्च अभिलाषा यही है कि एक ऐसा चक्र-प्रवर्तन कर दूँ, जो उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को सबके द्वार-द्वार पहुँचा दे और फिर स्त्री-पुरुष अपने भाग्य का निर्णय स्वयं कर ले। हमारे पूर्वजों तथा अन्य देशों ने भी जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर क्या विचार किया है, यह सर्वसाधारण को जानने दो। विशेषकर उन्हें यह देखने दो कि और लोग इस समय क्या कर रहे हैं और तब उन्हें अपना निर्णय करने दो। रासायनिक द्रव्य इकट्ठे कर दो और प्रकृति के नियमानुसार वे कोई विशेष आकार धारण कर लेंगे। परिश्रम करो, अटल रहो और भगवान पर श्रद्धा रखो। काम शुरू कर दो। देर-सबेर मैं आ ही रहा हूँ। 'धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति'—इसे अपना आदर्श बना लो।' और 'याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है; परन्तु शोक ! उन लोगों के लिए कभी किसी ने कुछ किया नहीं। हमारे आधुनिक सुधारक विधवाओं के पुनर्विवाह कराने में बड़े व्यस्त हैं। निश्चय ही मुझे प्रत्येक सुधार से सहानुभूति है; परन्तु राष्ट्र की भावी उन्नति विधवाओं को अधिकाधिक पति मिलने पर निर्भर नहीं, वरन् 'आम जनता की अवस्था' पर निर्भर है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो ? क्या उनका खोया हुआ व्यक्तित्व, बिना उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक वृत्ति नष्ट किये, उन्हें वापस दिला सकते हो ? क्या समता, स्वतंत्रता, कार्यकौशल, पौरुष में तुम पाश्चात्यों के भी गुरु बन सकते हो ? क्या उसी के साथ-साथ धर्म-विश्वास, संस्कृति और स्वाभाविक वृत्ति में हिन्दुओं की परम मर्यादा पर जमे रह सकते हो ? यह काम करना है और हम इसे करेंगे ही। तुम सबने इसी के लिए जन्म लिया है। अपने में विश्वास रखो। महान विश्वास महत् कार्यों के जनक हैं। हमेशा बढ़ते चलो। मरते दम

तक गरीबों और पददलितों के लिए सहानुभूति-यही हमारा आदर्श वाक्य है।''

भगिनी निवेदिता ने अपनी मनोहारी पुस्तक 'दि मास्टर ऐज आइ साव हिम' (मेरे गुरुदेव) में भारत में मानव-विकास के भविष्य के विषय में स्वामी विवेकानन्द की उक्तियों के सम्बध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करते हुए लिखा है (पृ० २४९) :

''हम मानवता के उस युग का, जिसका प्रारम्भ हुआ है, अभिनन्दन करते हैं। यह युग मुख्य रूप से श्रमिकों की समस्याओं में, अथवा जैसा कि स्वामीजी ने कहा, शूद्रों की समस्याओं में अपने को नियोजित रखेगा। एक दिन उन्होंने (स्वामीजी ने) कहा ''हमें शूद्रों की समस्याओं का समाधान करना है, परन्तु आह, कितने हंगामों और कोलाहलों के द्वारा !'' यह वाक्य उन्होंने ऐसे कहा जैसे कोई भविष्य में सीधे एकटक निहार रहा हो तथा उनकी आवाज में भविष्यवाणी की गूंज थी।

विवेकानन्द साहित्य के एक महावाक्य ने मेरे जीवन और चरित्र का गठन करने में मुझे प्रचुर सहायता की है जिससे विगत वहत्तर वर्षों से मैं भारत और विदेशों में मानवता की सेवा में व्यस्त रहा हूँ। वह वाक्य है : क्या तुम गम्भीरता को बालसुलभ सरलता से संयुक्त कर सकते हो ?

सन् १९३२ से ३४ के बीच मैंने मैसूर आश्रम में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विलियम मैक्डौगल की उन दिनों की लोकप्रिय पुस्तक 'कैरेक्टर एण्ड द कण्डक्ट ऑफ लाइफ' के पारायण में बड़ा आनन्द प्राप्त किया। उस पुस्तक के एक वाक्य ने मुझे आकर्षित किया और मैंने अपने बाद के व्याख्यानों में इसे अपने युवजनों को सम्प्रेषित किया है। वह वाक्य है : ''युवजन प्रशंसा की चाहत रखते हैं, परन्तु इसकी अपेक्षा प्रंशसनीय होने की चाहत रखना बेहतर है।''

कारागार में वन्दियों से संसर्ग

रामकृष्ण संघ में सम्मिलित होने के पश्चात् मैं जिन राष्ट्रीय सेवा के कार्यों में लगा था उनमें एक था कारागार के वन्दियों के बीच व्याख्यान देना। इसकी शुरुआत सर्व प्रथम मैसूर कारागार में १९३३-३४ में हुई। तत्कालीन मैसूर सरकार के आमंत्रण पर कई वर्ष पूर्व इसकी शुरुआत स्वामी विवेकानन्द के एक शिष्य ब्रह्मलीन स्वामी सोमानन्द ने की थी। कारागार में श्रीरामकृष्ण का एक लघु उपासना-गृह भी था तथा पूजा के लिए एक छोटी रकम मंजूर की गयी थी।

सन् १९३५ में मेरे बंगलोर आने तथा दूसरे ही वर्ष स्वामी सोमानन्द के स्वर्गत हो जाने के पश्चात् मुझे यह कार्य-भार संभालना था। और प्रत्येक रविवार के प्रातः कारागार में व्याख्यान देने में मुझे प्रसन्नता होती थी। करीब ४० से ५० के बीच कैदी सभा में उपस्थित रहा करते थे तथा मैं उन्हें राष्ट्रीयतापूर्ण भावों एवं गीता के कुछ भावों को वताया करता था। वे उन्हें पसन्द किया करते थे। उसी वर्ष किसी समय अपने श्रोताओं में कुछ नये ढंग के लोगों को देखकर मुझे आश्चर्य और आनन्द हुआ। वे थे काँग्रेस के नेतागण-श्री एच.सी. दासप्पा, जो वाद में केन्द्रीय रेल मंत्री हुए तथा श्री चेंगलरया रेड्डी, जो वाद में मध्य प्रदेश के काँग्रेसी राज्यपाल हुए। तत्कालीन मैसूर सरकार ने मैसूर राष्ट्रीय पार्टी पर प्रतिबन्ध लगा रखा था।

सन् १९३६ ई० में बंगलोर के केन्द्रीय कारागार में श्रीरामकृष्ण देव की जन्म शताब्दी मनायी गयी। एक लोकप्रिय कत्थक नर्तक ने हरिकथा का अभिनय किया। तदनन्तर समस्त कैदियों के बीच प्रसाद वितरण किया गया। कारागार के अधीक्षक भी इस कार्यक्रम में उपस्थित थे। उन लोगों ने मुझे खुले मैदान में एक कुर्सी पर बैठाया और कैदियों ने एक-एक कर आकर एक बड़ा-सा लड्डू प्राप्त किया तथा मुझे प्रणाम किया। कुल मिलाकर एक हजार वन्दी थे। उसके बाद कुछ कैदियों ने कहा- 'हमलोगों को इसके पहले कभी इतना आनन्द नहीं प्राप्त हुआ और न इतनी प्रसन्नता मिली।'

सन् १९४०-४१ में जब मैं अपने रामकृष्ण मिशन, रंगून, बर्मा में था तब मैं सरकार के आमंत्रण पर वहाँ के विख्यात या कुख्यात पागलों के कारागार में जाया करता था जहाँ अँग्रेज सरकार द्वारा भारतीय राजनीतिक वंदी भी भेजे जाते थे।

❑

अग्नि की उड़ान

ज्ञान का दीप जलाए रखूँगा

—डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम
राष्ट्रपति, भारतवर्ष

'हे भारतीय युवक
ज्ञानी-विज्ञानी
मानवता के प्रेमी
संकीर्ण तुच्छ लक्ष्य
की लालसा पाप है।
मेरे सपने बड़े
मैं मेहनत करूँगा
मेरा देश महान हो
धनवान् हो, गुणवान् हो
यह प्रेरणा का भाव अमूल्य है,
कहीं भी धरती पर,
उससे ऊपर या नीचे
दीप जलाए रखूँगा
जिससे मेरा देश महान हो।'

(22 मार्च 2002 को डॉ० कलाम द्वारा अंग्रेजी में लिखी कविता का हिन्दी अनुवाद)

स्वामी विवेकानन्द का आध्यात्मिक आक्रमण

–स्वामी गौतमानन्द

[२५ जुलाई, १९९३ को रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के तत्वावधान में आयोजित शताब्दी-समारोह में स्वामी गौतमानन्दजी, (रामकृष्ण मिशन शासी निकाय के सदस्य एवं सचिव रामकृष्ण मठ, चेन्नई) के सम्बोधन का सारांश]

सौ साल पहले अमेरिका के शिकागो शहर में विश्व धर्म सम्मेलन का आयोजन हुआ था। उद्देश्य था सभी धर्मों को एक मंच पर लाना। सोचा यह गया कि विश्व के समस्तधर्म कल्याणकारी काम करते आ रहे हैं। अगर सभी धर्मों को एक मंच पर लाया जा सके तो सभी मिलकर महान कल्याणकारी काम कर सकेंगे और तब जगत् का और भी कल्याण होगा। अमेरिका के आविष्कार की ४०० वर्ष-पूर्ति पर आयोजित विशाल प्रदर्शनी के साथ विश्व धर्म महासम्मेलन का जो आयोजन हुआ था वह इसी उद्देश्य और आकांक्षा से प्रेरित था। विश्व के अनेक महान धर्मों के प्रतिनिधि दुनिया के कोने-कोने से आमंत्रित किये गये थे। सभी के सभी महान विद्वान्। भारत से पधारे प्रतिनिधियों में एक दिव्य युवा संन्यासी भी सम्मिलित हुआ। उस विश्व धर्म महासभा में सभी धर्मों का मूलसार वेदान्त का प्रतिनिधि बनकर पश्चिम को वैदिक ऋषियों का अमर संदेश सुनाने जिसपर केवल भारतवासियों का अधिकार नहीं, अपितु समस्त मानवता का अधिकार है।

बचपन से ही नेतृत्व की विलक्षण क्षमता से सम्पन्न थे स्वामी विवेकानन्द। कक्षा में शिक्षक जब पढ़ाते तो लगता नरेन (स्वामी विवेकानन्द का संन्यास पूर्व नाम) ने पाठ कुछ भी नहीं सुना। किन्तु जब कहा जाता तो सारा पाठ हू-ब-हू सुना देता। कोई भी ऐसी विधा नहीं जिसमें वह पारंगत नहीं थे। तलवार चलाना हो, घुड़सवारी करनी हो, तैराकी हो, कुश्ती हो सब में अव्वल। संगीत में प्रवीण, अंग्रेजी, बंगाली, संस्कृत भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान्। साहित्य, दर्शन और जितनी भी विद्या थी सभी को हजम कर डाला था। ऐसा असाधारण युवक शायद अभी तक नहीं हुआ हो। एक जगह श्रीरामकृष्णदेव कहते हैं, दुनिया में नरेन जैसा लड़का अभी तक नहीं आया। यह वाक्य हम सुनते हैं श्रीरामकृष्ण के मुँह से। उम्र केवल 19 साल और जितनी विद्या है पढ़ ली उन्होंने। किन्तु फिर भी अशांत है मन एक बड़े प्रश्न को लेकर कि इतनी सारी विद्या मुझे मिल गयी फिर भी मन में शान्ति नहीं मिली। कोई भी असली विद्या मिली हो तो शान्ति मिलनी चाहिए, आनन्द मिलना चाहिए। लेकिन दोनों नहीं मिल रहे हैं। क्या जितनी विद्या उपलब्ध हुई उसमें भी क्या कुछ सत्य है ? वह सत्य है जिसे लोग ईश्वर समझकर पूजते हैं ? यह सत्य वही है जिसके बारे में दर्शन पूरा आख्यान कर पाने में असमर्थ है, विज्ञान व्याख्या कर पाने में असफल है। वही सत्य है जिसे अनुभूति से समझा जाय, साक्षात्कार किया जाय। वह सत्य कहाँ मिले ? कहाँ पाया जा सकता है ? इसी खोज में श्रीरामकृष्णदेव के पास आये। मिलते ही सीधा प्रश्न किया–क्या आपने भगवान को देखा है, परम सत्य को देखा है ? और श्रीरामकृष्ण ही ऐसे पहले महापुरुष थे जिन्होंने सीधे प्रश्न का सीधा उत्तर दिया। इसके पहले भी अपने सवाल लेकर बड़े-बड़े विद्वानों के पास गये थे। सभी ने कहा-हमने परम सत्य की उपलब्धि नहीं की है। लेकिन अत्यन्त साधारण दिखने वाले श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया : हाँ बेटा, मैंने भगवान को देखा है, परम सत्य को देखा है और उसे सब कोई देख सकता है। उसके लिए एक तरीका है, एक पद्धति है। अगर उस तरीके को जानने की कोशिश की जाए तो सभी ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। नरेन ने सुना, आनन्दित हुए और उसी क्षण उन्हें मन ही मन गुरु स्वीकार कर लिया। गुरु ने जो रास्ता बताया उस पर बड़ी कठोरता से चले। जिन्दगी मानो होम कर दी उस साधना में। उन्होंने सिर्फ दो घंटों का विराम लेकर हर दिन बाइस घंटे की साधना की। ऐसी तपस्या के बाद उन्होंने उस तत्व का लाभ किया जिसे किताबों में नहीं पाया जा सकता है। स्वामी विवेकानन्द ऐसी ऊँचाई पर पहुँच गये जहाँ पर

खड़े होकर वे कह सकते थे– मैंने ईश्वर का रूप देखा है, ईश्वर को अरूप के रूप में भी देखा है और देखा है उसे हर प्राणी में। सचमुच एक महान् ऋषि बन गये स्वामी विवेकानन्द। अपने देश की आध्यात्मिक संस्कृति के योग्यतम प्रतिनिधि बनकर पहुंचे शिकागो–विश्व धर्म महासभा में। स्वामीजी ने पश्चिम के देशों में अपने देश की गरिमा गायी। उस समय तक विश्व को इस महान देश की गौरव गाथा सुनाने कोई नहीं गया था उनके जैसा। उनके पहले कुछ भारतीय पश्चिम के देशों में गये थे। उन्होंने भारत की महिमा का प्रचार जरूर किया, लेकिन भारत के दोषों के बारे में भी बढ़ा-चढ़ाकर कहना पड़ा उनको, क्योंकि उसके बिना उनकी बात कोई भी माने वाला नहीं था। यही एक वीर पुरुष थे जिन्होंने भारत की केवल गरिमा ही गायी। उन्होंने भारत की हर चीज को अपने हृदय में गौरव का स्थान दिया था। इसलिए जब वीर पुरुष के समान भारत का संदेश पाश्चात्य जगत् के समक्ष रखा तो सभी ने उतने ही गौरव से, उसे स्वीकार किया। उन्हें सुनकर यह धारणा बनी कि भारत सचमुच एक उज्ज्वल देश है। जैसे ही शिकागो वक्तृता समाप्त हुई विद्वत् श्रोता मण्डली में कानाफूसी होने लगी। जिस देश में ऐसा विद्वान हो वहाँ अपने मूर्ख धर्म प्रचारकों को भेजना क्या मूर्खता नहीं है ? अधकचरे विद्वानों की बड़ी-बड़ी मिशनरी बनाकर वहाँ भेजते हैं क्या यह बुद्धिमानी है ? स्वामी विवेकानन्द का पाश्चात्य देशों में इतना जबरदस्त प्रभाव पड़ा कि भारत के बारे में सारी धारणाएँ ही पलट गयीं। जिनकी धारणा थी कि भारत अंधकार का देश है, स्वामीजी को सुनने के बाद वे सोचने लगे कि भारत ऋषियों का देश है, विवेकानन्द जैसे मनीषियों का देश है। मिशनरियों को तो उस देश से हमारे पास आना चाहिए।

सचमुच भारत के पास ऐसी सम्पदा है जिसकी जरूरत पश्चिम को है। अवश्य पश्चिम के पास भी कुछ ऐसी सम्पदा है जिसकी जरूरत भारत को है। यह है विज्ञान एवं तकनीकी। लेकिन भारत के पास ऐसी सम्पदा है जिसके बिना पश्चिमी संस्कृति बिल्कुल अधूरी रह जायेगी। वह है वेदान्त दृष्टि। स्वामीजी ने पाश्चात्य देशों से कहा कि जब तक वेदान्त का तत्व नहीं अपनाओगे, तुम्हारे तकनीकी और विज्ञान सब नष्ट हो जाने वाले हैं। तुम्हारे पास विज्ञान की शक्ति है, लेकिन उसे लोगों के कल्याण के लिए ही व्यवहार करना चाहिए, क्या ऐसी विवेक-बुद्धि है ? क्या टेक्नालॉजी के कॉलेज में विवेक की पढ़ाई होती है ? ऐसा कोई ज्ञान टेक्नालॉजी या साइंस नहीं सिखाता है। लेकिन यह विवेक वेदान्त धर्म सिखाता है। और यह जीता-जागता धर्म है भारत में, और कहीं नहीं है। धर्म को भारत में दर्शन कहते हैं, साक्षात्कार कहते हैं।

स्वामीजी के सिंहनाद से एक बहुत बड़ा तत्व पश्चिमी देशों को समझ में आया कि भारत पिछड़ा देश नहीं है, इसके पास महान आध्यात्मिक सम्पत्ति वेदान्त दर्शन है, जिसकी आवश्यकता है समस्त विश्व को सर्वनाश से बचाने के लिए। वेदान्त दर्शन क्या कहते हैं ? स्वामीजी ने सरल शब्दों में समझाया-सारा ब्रह्माण्ड एक ही ईश्वरतत्व से बना हुआ है। विज्ञान भी स्वीकार करता है कि एक तत्व, एक ही ऊर्जा से पूरा ब्रह्माण्ड आया है। वेदान्त भी वही कहता है। जो चैतन्य है, प्रेममय है वही इस ब्रह्माण्ड के मूल में है। हम सब उस ईश्वर तत्त्व के अंश हैं। इसलिए हम एक हैं। अगर यह विचार हमारे बीच रहता तो क्या हम ऐटम बम गिराकर तबाही मचाते ? कदापि नहीं। हम अपने ही पैरों को काटते नहीं क्योंकि यह हमारा अपना है। इसी तरह जगत् के साथ अपनापन लाना हो तो हमें यह शिक्षा चाहिए कि हम सभी ईश्वर में एक हैं, आत्मा में एक हैं, ब्रह्म में एक हैं। इसलिए स्वामीजी ने पश्चिम से कहा-तुम्हारे पास तकनीकी है, विज्ञान है पर तुम्हें वेदान्त की आवश्यकता है।

जब भारत वापस आये तो सोये हुए देशवासियों को जगाया। उन्होंने सिंहनाद किया–क्यों अपने को असहाय, गरीब समझ रहे हो। तुम्हारे पास सबसे बड़ी सम्पत्ति है–वेदान्त का ज्ञान जिसे हजारों सालों से तुम्हारे पूर्व पुरुषों ने तुम्हें दिया है। यह

तुम्हारी धमनियों में रक्त के साथ बह रहा है। समस्त मनुष्य इस वेदान्त दृष्टि को अपनाकर एक हो जा सकते हैं। स्वामीजी ने इसी सम्पदा के विषय में भारतवासियों को जगाया और युवकों को आदेश दिया–गाँव-गाँव जाकर हर आदमी को सुनाओ–तुम सभी लोगों के अंदर वही दिव्य शक्ति है जिसका कोई अंत नहीं, कोई आदि नहीं। कोई अपने को दुर्बल न कहो। उठो ! जब तक लक्ष्य पर नहीं पहुँच जाते रुको मत। यह सिंहगर्जना जब उन्होंने अंदर की शक्ति को, आध्यात्मिकता को जगाने के लिए की, जब गरीब से गरीब, दुर्बल से दुर्बल लोगों ने यह सुना कि सभी के अंदर आत्मा है, और आत्मा के अंदर अनन्त शक्ति है, तो सोई हुई ये सारी भावनाएँ उद्‌बुद्ध हो गयीं। स्वामीजी के इस संदेश से आध्यात्मिकता का जागरण हुआ, आत्मविश्वास जाग उठा। आत्मगौरव का जागरण तो उसी दिन हो चुका था जब स्वामीजी ने पाश्चात्य जगत् की वैज्ञानिक उपलब्धियों की चकाचौंध के बीच भारत को आध्यत्मिकता को स्थापित कर विद्वानों को विस्मित कर दिया था। एक तरफ भारत का गौरव और दूसरी तरफ भारत का आत्मविश्वास जगा दिया और कहा–देखो इस विश्वास और गौरव को लेकर हर व्यक्ति काम में लग जाओ। जो नीचे गिरा हुआ है उन सबको ऊपर उठाने की चेप्टा करो। धनी और मध्यम वर्ग का आह्वान किया–तुम्हारे पास विद्या और धन है उससे साधारण लोगों को ऊपर उठाने की चेप्टा करो।

स्वामीजी ने पश्चिम को कहा–भारत के वेदान्त को लो, क्योंकि तभी विज्ञान की शक्ति को सम्भाल सकोगे। दूसरी ओर भारत से कहा–तुम पश्चिम के पैरों तले बैठकर विज्ञान और तकनीकी को सीखो और उसके बदले में उन्हें वेदान्त का उपदेश दो। यहाँ से वेदान्त के उपदेशक वहाँ जायँ और वहाँ से वैज्ञानिक, तकनीकी के जानकार भारत आयें, इस तरह का आदान- प्रदान हो, पश्चिम और पूरब का संगम हो और नयी दुनिया की सृष्टि हो। स्वामीजी ने भारतीय आध्यात्मिकता को विश्व सेवा की दृष्टि दी। उन्होंने कहा तुम अपने देश का उद्धार तो करोगे ही इसके साथ संसार के उद्धार के लिए भी चेप्टा करो। स्वामी जी ने शंकराचार्य की तरह, बुद्ध की तरह, चैतन्य की तरह ईश्वर का अनुभव किया था, ईश्वर से बातें की थीं। किन्तु इतना बड़ा संत होने पर भी उन्होंने यह नहीं कहा कि सब लोग आँखें बंदकर ईश्वर की चिन्ता करो। उन्होंने कहा–आँखें बंद कर ईश्वर का ध्यान करने के बाद तुम जब खाना खाने को जाओगे तो आसपास, पड़ोस के लोगों के पेट में अन्न पड़ा है या नहीं इसकी भी चिन्ता करो। जब तुम अपना उपकार चाहते हो तो दूसरों का भी उपकार करो। अपने लिये शिक्षा चाहते हो तो दूसरों को भी शिक्षा दो। अपना गौरव चाहते हो तो दूसरों को भी गौरव दो। यह करते-करते जीवन में आगे बढ़ने की चेष्टा करो। यही वेदान्त का सार है और उन्होंने इसे, इस आध्यात्मिकता को जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू करने को कहा जिससे सभी जीवों में विद्यमान ईश्वर की पूजा हो सके। पहले आध्यात्मिकता कहने से ही बोध होता था कि यह केवल धर्म क्षेत्र में ही काम कर सकता है, किसानों के खेतों में नहीं। लेकिन स्वामीजी ने कहा–मेरा धर्म वह है जो किसान के खेतों में काम करेगा, वकील के वकालतखाने में काम करेगा, पाठशालाओं, महाविद्यालयों, विश्व-विद्यालयों में काम करेगा, सभी जगह काम करेगा। तभी वकील अच्छा वकील बनेगा, किसान अच्छी किसानी करेगा, शिक्षक अच्छा शिक्षक बनेगा। इस आत्मा की शक्ति से यह भारत जाग उठे, उसकी सभी क्षेत्रों में उन्नति हो और भारत अत्यन्त वैभवपूर्ण स्थान पर पहुँच जाय, यह स्वामी जी का केवल स्वप्न नहीं था, उनका भविष्यत् दर्शन था जिसे उन्होंने विश्वव्यापी आयाम दिया। उन्होंने अपने देशवासियों से कहा कि तुम्हारी आध्यात्मिकता की बड़ी आवश्यकता है पश्चिम के देशों को। इसलिए पहले अपने देश को संभालो। इसके बाद दूसरे देश पर आक्रमण करो–आध्यात्मिक रूप से। स्वामीजी का शब्द था आक्रमण। जब दिग्विजय कर स्वामीजी भारत आये तो एक पत्रकार ने पूछा, आपके संदेश की क्या खासियत है ? उन्होंने जवाब दिया–आक्रमण, आध्यात्मिक आक्रमण सचमुच यही आध्यात्मिक आक्रमण, समस्त विश्व को वेदान्त के भावों से आप्लावित कर देने की प्राणपण चेप्टा ही उनके सन्देश का सार है।

स्वामी विवेकानन्द का सन्देश

महामहिम विष्णुकान्त शास्त्री, राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

(रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, लखनऊ में प्रदत्त व्याख्यान का अनुलिखन)

किसी महापुरुष को स्मरण करने का उद्देश्य यही होना चाहिए कि हम उनके तेजोमय जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर अपने जीवन को सार्थक करें। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जब हमारे देश के नवशिक्षित लोग विदेशी चमक-दमक से चौंधियाकर, उसके मोहक प्रभाव में पड़कर, अपना सर्वस्व त्यागकर पश्चिम का अन्धानुकरण करने को उद्यत हो रहे थे, तब आत्मगौरव एवं आत्मविश्वास के मूर्तरूप स्वामी विवेकानन्द ने हमारा दिशा-निर्देश किया था, युगों की ग्लानि और हीन भावना से मुक्तकर हमें अपने वास्तविक स्वरूप की उपलब्धि करायी थी। अतः यह आवश्यक है कि हम पुनः पुनः उनके सन्देश को स्मरणकर विभ्रान्तकारी आकर्षणों के मायाजाल को काटकर उनके दिखाये रास्ते पर चलते रहें ।

स्वामीजी का मूल सन्देश क्या है ? उन्होंने इसे एक छोटे-से सूत्र में ग्रथित कर दिया है—आत्मनो मोक्षार्थं जगद्हिताय च—अपनी मुक्ति तथा जगत् के हितार्थ। चिन्तनशील लोगों के मनों में ये प्रश्न उठते रहते हैं कि हम ऐसा क्या करें, जिससे हमारा जीवन सार्थक हो जाय ? हम क्यों जिएँ ? कैसे जिएँ ? स्वामीजी का उत्तर है कि हमारे जीवन की चरितार्थता इसी बात में है कि हम अपने मोक्ष के लिए और जगत् के हित के लिए जिएँ। भारतीय दृष्टि के अनुसार 'मोक्ष' परम पुरुषार्थ है। इसे समझने के लिए पहले पुरुषार्थ को समझना होगा।

पुरुषार्थ शब्द का प्रयोग कभी-कभी घोर परिश्रम, कठिन उद्यम के अर्थ में भी होता है, किन्तु यह उसका गौण अर्थ है। उसका मूल अर्थ उसकी व्युत्पत्ति से स्पष्ट होता है—पुरुषैः अर्थ्यते इति—वह जो पुरुषों अर्थात् मनुष्यों द्वारा चाहा जाय। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्यों का सर्वप्रधान काम्य सुख है। फिर अनुभव यह बताता है कि भौतिक सुख की प्राप्ति एक बड़ी सीमा तक 'अर्थ' पर निभर्गर है। अर्थ का सीधा-सादा मतलब है, आवश्यकताओं की पूर्ति का विनिमय-मूलक साधन यानी धन-दौलत। अतः अर्थ को भारतीय चिन्तकों ने एक पुरुपार्थ के रूप में स्वीकार किया, पर यह भी स्पष्ट है कि अर्थ साधन ही है, साध्य नहीं। अर्थ-प्राप्ति से इसलिए सुख का बोध होता है कि हम उसके द्वारा अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं, अच्छा और यथेच्छ भोजन कर सकते हैं, बढ़िया कपड़े, आलीशान मकान, मोटर-गाड़ी, विमान आदि तरह तरह के विलास के साधन खरीद सकते हैं। कामोपभोग के साधन के रूप में अर्थ का महत्त्व स्वतः सिद्ध है। दूसरी तरफ यदि किसी के पास अर्थ बिल्कुल ही न हो, न बचने के लिए परिश्रम की क्षमता ही हो, तो वह भूखों मर जाएगा। इसलिए लोग सुरक्षा और कामोपभोग के लिए अर्थ-संग्रह पर बहुत बल देते हैं किन्तु यह भी स्पष्ट है कि हमारा सारा अर्थ, हमारी सारी धन-दौलत हमारे बाहर है और वह हमें पहचानती तक नहीं। फिर वह साधन ही है, उसे साध्य मानना बुद्धि का विभ्रम ही कहा जाएगा।

इन्द्रियों और विषयों के अनुकूल संयोग द्वारा ही सुख की पहली और सबसे स्थूल अनुभूति होती है। आँखों को सुन्दर रूप, कानों को मधुर शब्द, नाक को मोहक सुगन्ध, रसना को सुस्वादु भोजन और त्वचा को कोमल स्पर्श अच्छा लगता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इन्द्रिय मन तथा बुद्धि के स्तरों पर आत्मवश अनुकूल वेदनीयता उत्तरोत्तर सूक्ष्म और उन्नततर सुखानुभूति जगाती है। इसलिए भारतीय चिन्तकों ने विपय सुखों के उपभोग के साथ-साथ साहित्य, संगीत, नृत्य, नाट्य, चित्र आदि के उपभोग के द्वारा प्राप्त सुखों को भी 'काम' पुरुषार्थ के अन्तर्गत ही रखा है। स्वामीजी के समय भी समाज के प्रभावशाली वर्ग में अर्थ और काम के प्रति उद्दाम लालसा विद्यमान थी। भूमण्डलीकरण और उदारीकरण का जो कुप्रभाव आज के समाज पर पड़ा है, वह यही है कि लोग जल्दी-से -जल्दी, ज्यादा-से- ज्यादा रुपये कमाकर

मौज-मस्ती करना चाहते हैं। अतः भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है। निर्लज्ज, अवैध अर्थ व काम की उपासना से क्या सचमुच ही सुख मिल सकता है ?

स्वामी विवेकानन्द का स्पष्ट उत्तर है—नहीं। उन्होंने कई स्थलों पर पश्चिम और पूर्व की तुलना की है और दोनों की कमियों की ओर इंगित किया है। उन्होंने कहा है कि पश्चिम में बहुत धन है, सुख-समृद्धि के असंख्य साधन हैं, प्रचुरता है, विलासिता है, किन्तु गहरे उतरने पर लगता है कि उन सबके भीतर रोदन है, अभाव है, अशान्ति है, हाहाकार है, छटपटाहट है, क्योंकि भीतरी अभाव को अर्थ और काम से भरा नहीं जा सकता। अर्थ और काम के प्रचुर उपभोग के बावजूद वह अभाव बना रहता है। अतः अशान्ति भी बनी रहती है। दूसरी तरफ उन्होंने अपने समय के भारत को भी भली-भाँति देखा-परखा था। संन्यास लेने के बाद उन्होंने तीन वर्षों तक पूरे भारत में परिव्राजक के रूप में भ्रमण किया था। उन्होंने अनुभव किया था कि वेदान्त के उच्च ज्ञान के बावजूद भारत में अशिक्षा है, अन्धविश्वास है, छुआछूत की हृदयहीनता है, घनघोर गरीबी है। केरल में अस्पृश्यता की असह्य यंत्रणा से क्षुब्ध होकर उन्होंने कहा था—यह पागलों का प्रदेश है। पूरे भारत को मथकर स्वामी विवेकानन्द ने यह निष्कर्ष निकाला था कि भारतीय समाज बाहर से तो आर्त है, आतुर है, पीड़ित है, गरीब है, अशिक्षित है, किन्तु उसका मन अब भी स्वस्थ है। अब भी वह समझता है कि मनुष्य अन्याय से, अवैध पद्धति से धन संचय कर, कामोपभोग कर सुखी नहीं हो सकता; सुखी होने के लिए धर्म का आश्रय अनिवार्य है।

पुर्व और पश्चिम—दोनों की सीमाओं को समझकर ही स्वामीजी ने यह निश्चय किया था कि हमें पूर्व और पश्चिम को पास लाना होगा। पूर्व को पश्चिम के भौतिक ज्ञान-विज्ञान तथा आर्थिक समृद्धि की जरूरत है और अर्थ-काम-परायण पश्चिम को पूर्व के धर्म का आश्रय लेना होगा। अर्थ और काम के प्रति आसक्त व्यक्ति धर्म की ओर उन्मुख नहीं हो सकता। इसीलिए ठाकुर श्रीरामकृष्ण कामिनी और कांचन के त्याग की बात कहते थे। यहाँ कामिनी के त्याग का अर्थ काम का त्याग है, नारी की निन्दा यहाँ अभीष्ट नहीं है। साधिका नारी बेखटक कांचन और कामी के त्याग की बात कह सकती है। विचार करने पर लगेगा कि अर्थ हमारे बाहर है, काम का अवस्थान इन्द्रियों और मन में है और धर्म उससे भी सूक्ष्म है, उसकी स्थिति शुद्ध बुद्धि या विवेक में है। इसलिए भारत का चिन्तक कहता है कि अर्थ और काम की सिद्धि 'धर्म' के द्वारा होनी चाहिए तभी सुख मिलेगा। अधर्म से प्राप्त अर्थ और काम तो दुःख के मूल ही हैं। महाभारत की स्पष्ट घोषणा है—धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः किं न सेव्यते—जिस धर्म से उपलब्ध अर्थ और काम सुख के व्यावहारिक हेतु बनते हैं, उस धर्म का सेवन मनुष्य क्यों नहीं करते ? अभिप्राय यही है कि धर्म द्वारा ही अर्थ और काम की उपलब्धि कर मनुष्य इस जगत् में सुखी हो सकता है।

स्वामी विवेकानन्द ने जिस धर्म पर सर्वाधिक बल दिया है, वह सेवा-धर्म है। उनके गुरु श्रीरामकृष्ण देव ने उन्हें शिक्षा देते हुए कहा था—जीवे दया नय शिवज्ञाने जीवसेवा-जीवों पर दया करने का भाव उचित नहीं है, इससे तुम्हारे मन में अहंकार आ सकता है। तुम्हें तो यह समझना चाहिए कि ईश्वर ही समस्त जीवों में सृष्टि के कण-कण में व्याप्त हैं, अतः जीवों को शिव, परमात्मा मानकर उनकी सेवा करनी चाहिए। इसलिए स्वामीजी ने अपने शिष्यों के सामने सेवा का आदर्श प्रस्तुत करते हुए कहा था-'दरिद्रदेवो भव, मूर्खदेवो भव-। स्वामीजी ने लक्ष्मीनारायण के देश में दरिद्रनारायण की स्थापना कर अपने शिष्यों को प्रेरणा दी थी कि तुम लोग विनम्रतापूर्वक दरिद्रों की सेवा करो, उन्हें दरिद्रता के ऊपर उठने के उपाय बताओ, अशिक्षितों को शिक्षित बनाओ, रोगियों की चिकित्सा करो। प्लेग की महामारी के समय सवयं विवेकानन्द ने प्लेग से पीड़ितों की सेवा की थी। आज भी रामकृष्ण मिशन शिक्षा, चिकित्सा आदि सेवा के क्षेत्रों में अभूतपूर्व कार्य कर रहा है।

सच कहा जाय तो विवेकानन्द के लिए धर्म भी एक पड़ाव ही था, लक्ष्य नहीं। धर्म की अवस्थिति तो शुद्ध बुद्धि में ही हैं। उनकी दृष्टि तो उस पर थी, जो बुद्धि के भी परे है—यो बुद्धेः परतस्तु सः। वे परम सत्य का साक्षात्कार करना चाहते थे।

इसीलिए वे चढ़ती जवानी में सबसे पूछते फिरे थे कि क्या आपने ईश्वर को देखा है ? महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने भी स्वीकार किया था कि मैंने ईश्वर के दर्शन नहीं किये हैं। सिर्फ परमहंस श्रीरामकृष्ण देव ने उनसे कहा, 'हाँ, मैंने ईश्वर के दर्शन किये हैं और तुम्हें भी करा सकता हूँ।' गुरुजी की कृपा से विवेकानन्द ने भी ईश्वर के दर्शन किये। वेद की उक्ति है–तदपश्यत् तदभवत् तदासीत्–उसे देखा, वही हो गया, वही था। किसी को देखने या जानने से अगर कोई वही हो जाता है, तो वह वस्तुतः वही हो जाता है, जो वह वास्तव में था। केवल अज्ञान के कारण वह अपने को कुछ और मान बैठा था। विवेकानन्द भी नाम और रूप से ऊपर उठकर वही हो गए और शंकराचार्य के समान ही अनुभव करने लगे–

मनोबुद्ध्यहंकार चित्तानि नाहं
न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुः
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

–अर्थात् 'न मैं मन हूँ, न बुद्धि, न चित्त, न अहंकार, न कान हूँ, न जीभ, न नाक, न आँख, न आकाश, न भूमि, न तेज (अग्नि), न वायु, मैं तो चिदानन्दरूप शिव हूँ, शिव हूँ।'

पञ्च महाभूत, इन्द्रिय, अन्तःकरण आदि से ऊपर उठकर स्वयं को अतमस्वरूप अनुभव करना ही मुक्त हो जाना है, मोक्ष की प्राप्ति है। तब न कर्तव्य का अहं रह जाता है, न कर्मफल पाने की स्पृहा। नाम और रूप के प्रति अनासक्ति आत्मस्वरूप की चेतना को जागृत रखती है। इसी जीवनमुक्त स्थिति में स्वामीजी ने अपना संन्यासी जीवन जिया।

कन्याकुमारी के शिलाद्वीप में ध्यानमग्न स्वामी विवेकानन्द को प्रतीत हुआ कि श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव पैदल समुद्र पार कर रहे हैं और उन्हें भी समुद्र पार करने की प्रेरणा दे रहे हैं। इस अनुभव से उन्हें लगा कि शिकागो में आयोजित होनेवाले विश्व-धर्म-सम्मेलन में जाना चाहिए। उन्होंने अपने मद्रासी शिष्यों से चर्चा की। उनके द्वारा एकत्रित धनराशि अमेरिका के टिकट की कीमत की तुलना में काफी कम थी। विवेकानन्द ने कहा–''यह राशि गरीबों में बाँट दो। माँ को मुझे अमेरिका भेजना होगा, तो वे स्वयं व्यवस्था करेंगी।'' उन्होंने सचमुच व्यवस्था कर दी। उनके अनेक शिष्यों तथा खेतड़ी-नरेश अजीत सिंह ने उनके अमेरिका जाने का प्रबन्ध किया। अमेरिका पहुँचने पर स्वामीजी को ज्ञात हुआ कि वे न किसी धार्मिक संस्था के प्रतिनिधि हैं, न उनके पास किसी धर्मगुरु का दिया परिचय-पत्र ही है। अतः वे धर्मसभा में अंश-ग्रहण नहीं कर सकेंगे। वे कुछ परेशान जरूर हुए होंगे, पर विचलित नहीं हुए। वे अपना प्रिय श्लोक गुनगुनाने लगे–

किं नाम रोदसि सखे त्वयि सर्वशक्तिः
आमंत्रयस्व भगवन् भगदं स्वरूपम्।
त्रैलोक्यमेतदखिलं तव पादमूले
आत्मैव हि प्रभवते न जडः कदाचित्॥

–अर्थात् 'हे सखे, तुम रो क्यों रहे हो ? तुम्हारे भीतर समस्त शक्तियाँ निहित हैं। अपने सर्वशक्तिमान स्वरूप का आवाहन करो।तीनों लोक तुम्हारे चरणों के नीचे लोटेंगे। आत्मा ही विजयिनी होती है, जड़ शक्तियाँ नहीं।'

और वैसा ही हुआ। शिकागो की धर्मसभा में उन्हें सादर बोलने को आमंत्रित किया गया। अपने 'मेरे अमेरिका-वासी बहनो और भाइयो' सम्बोधन से ही उन्होंने श्रोताओं को जीत लिया। अमेरिकी श्रोताओं ने सोचा-जरूर यह कोई विलक्षण व्यक्ति है, जो हमें बहन मानता है, भाई मानता है, गैर नहीं समझता। लोग भावाभिभूत हो गए, दो मिनटों तक तालियाँ ही बजती रहीं। विवेकानन्द उस धर्मसभा के सर्वाधिक प्रभावी वक्ता सिद्ध हुए। बाद की कहानी तो जगजाहिर है।

'मोक्ष' का अर्थ होता है छुटकारा। तत्काल प्रश्न उठता है, किससे छुटकारा ? कैसे मिलता है यह छुटकारा ? स्वामीजी का उत्तर है और मोक्ष का अर्थ है-अज्ञान से छुटकारा, प्रकृति के बन्धन से छुटकारा। उन्होंने बारम्बार समझाया है कि जब हम अपने वास्तविक चैतन्य स्वरूप को भूलकर अपने को नाम-रूप से आबद्ध छोटी-सी इकाई मान लेते हैं, तभी हमारे दुःखों की उत्पत्ति होती है। उनका कहना था कि मोक्ष-प्राप्ति के लिए अपने सीमित होने के अज्ञान प्रसूत भाव को त्यागकर विश्वव्यापी सच्चिदानन्दमयी निर्गुण सत्ता से अभेदत्व स्थापित करने के लिए 'तत्त्वमसि' महावाक्य को आत्मसात करना होगा, वही हो जाना होगा,

क्योंकि हम वास्तव में वही हैं, केवल अज्ञान के कारण अपने को सीमाबद्ध मानते हैं। उनका कहना था कि 'त्याग' के मार्ग पर चलकर ही हम इस लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। इसीलिए उनकी शिष्या भगिनी निवेदिता ने अपने बालिका विद्यालय का आदर्श-वाक्य रखा था–त्यागात् जायते शक्तिः भागवती–त्याग के द्वारा ही भागवती शक्ति का उदय होता है। दुनिया के साधारण लोग त्याग के विपरीत परिग्रह के रास्ते पर चलते हैं। कहा जा सकता है कि परिग्रहात् जायते शक्तिः भोगवती–अर्थात् परिग्रह से भोगवती शक्ति का उदय होता है। पहला यदि श्रेय का मार्ग है तो दूसरा प्रेय का मार्ग। पहला रास्ता तलवार की धार पर चलने के समान दुर्गम है, कठिन है, किन्तु वही मोक्ष का रास्ता है, असीम आनन्द प्राप्त करने का रास्ता है। दूसरे रास्ते पर चलनेवालों को विषय-सुखों की प्राप्ति हो सकती है, किन्तु वे सुख की भ्रान्ति मात्र हैं, गहन दुःखों की जड़ हैं, बन्धन में डालनेवाले हैं। सर्वत्यागी संन्यासी को ही मोक्ष मिल सकता है, जो विवेकशील मानवों को प्राप्त करना ही चाहिए। स्वामीजी का यही सन्देश मूर्त्त हो उठा है– आत्मनो मोक्षार्थ जगद्-हिताय च–के रूप में जीने के उनके आह्वान में !

परन्तु स्वामीजी यहीं नहीं रुकते। कई बार लगता है कि विवेकानन्द ज्ञानमार्गी हैं, ज्ञानी हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि वे ज्ञानी हैं, किन्तु वे शुष्क ज्ञानी नहीं हैं। सारी सृष्टि दुःखों से तड़पती रहे और मैं अकेला मुक्त हो जाऊँ-यह बात उन्हें स्वीकार नहीं थी। याद आ रहा है श्रीमद्-भागवत (७.९.४४) में आयी प्रह्लाद-स्तुति का यह श्लोक–

प्रायेण देव मुनयः स्वविमुक्तिकामाः
मौनं चरन्ति विजने न परार्थनिष्ठाः।
नैतान्विहाय कृपणान् विमुमुक्ष एको
नान्यं त्वदस्य शरणं भ्रमतोऽनुपश्ये॥

–अर्थात् 'हे देव ! मुनिगण प्रायः अपनी ही मुक्ति की इच्छा से एकान्त में रहकर मौन धारण किये रहते हैं, दूसरों के हित में तत्पर नहीं होते, कि... मैं इन दीन- दुःखियों को छोड़कर अकेले मु... मुक्त होना नहीं चाहता और इन भटकनेवालों का आपके सिवाय दूसरा कोई उद्धार भी नहीं कर सकता। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप उनका ... कल्याण करें।'

इसी भाव की महिमा स्वामीजी में भी परिलक्षित होती है। वे नहीं चाहते थे कि संसार के लोग विविध पीड़ाओं से भले ही ग्रस्त रहें, मैं तो मुक्त हो जाऊँ। इसीलिए उनका सन्देश है कि हमारा जीवन जन-गण के मंगल हेतु समर्पित होना चाहिए, केवल अपने हितार्थ नहीं। यह भी द्रष्टव्य है कि उनकी परिधि में केवल उनकी जाति, धर्म,देश के लोग नहीं, सारा विश्व आता है। जिसने सभी प्राणियों में अपने को और अपने में सब प्राणियों को प्रत्यक्ष कर लिया हो, वह तो सबों का ही हित चाहेगा। उनकी पीड़ा, अशिक्षा, दरिद्रता आदि को दूर करने की सेवा से ही यह हित शुरू होता है और उन्हें मोक्ष प्राप्त कराने की सीमा तक जाता है। क्योंकि किसी का सर्वोच्च हित उसके अपने स्वरूप का बोध करा देने में ही निहित है।

स्पष्टतः स्वामी विवेकानन्द का यह सन्देश किसी काल या देश तक सीमित नहीं है। यह सच्चे अर्थों में सार्वकालिक है, सार्वभौम है, सार्विक है, अर्थात् सब कालों के लिए,सब देशों के लिए, सब प्राणियों के लिए है। तो भी लक्षणीय है कि स्वामीजी का जीवन इसी सन्देश के अनुरूप ... हुआ है। जो उनहोने कहा है, वही किया है। अतः हम सब उनके इस सन्देश को अपने व्यवहारों में मूर्त करें, जितनी हमारी शक्ति है, उतनी मात्रा में इस सन्देश को अपने जीवन में उतारें। श्रेय के मार्ग पर चलनेवाले निःश्रेयस की प्राप्ति करते ही हैं–इस विश्वास के साथ इस पथ पर चलना शुरू करें। स्वामीजी के जीवन और सन्देश से हम यही प्रेरणा ग्रहण करें, तो हमारा जीवन भी धन्य हो जाएगा। ❑

> मेरे साहसी युवको, यह विश्वास रखो कि तुम्हीं सब कुछ हो–महान् कार्य करने के लिए इस धरती पर आये हो। गीदड़-घुड़कियों से भयभीत न हो जाना–नहीं, चाहे वज्र भी गिरे, तो भी निडर हो खड़े हो जाना और कार्य में लग जाना।
>
> *–स्वामी विवेकानन्द*

गुरुत्व की तीन शर्तें

स्वामी शशांकानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची

स्वामी विवेकानन्दजी ने सद्गुरु के सम्बन्ध में तीन मुख्य शर्तों का उल्लेख किया है। इन तीन शर्तों को पूर्ण किए बिना सद्गुरु नहीं हो सकते।

पहली शर्त

स्वामीजी ने कहा, ''गुरु के सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि उन्हें धर्मशास्त्रों का मर्म ज्ञात हो। जो गुरु शब्दाडम्बर के चक्कर में पड़ जाते हैं, जिनका मन शब्दों की शक्ति में बह जाता है, वे भीतर का मर्म खो बैठते हैं। शास्त्रों की वास्तविक आत्मा के ज्ञान से ही सच्चे गुरु का निर्माण होता है। शास्त्रों का शब्दजाल एक सघन वन के सदृश है, जिसमें मनुष्य का मन भटक जाता है और वह रास्ता ढूँढे नहीं पाता।''

(वि०सा० IV-२१)

श्रीमद् शङ्कराचार्य जी विवेक चूड़ामणि में कहते हैं कि **''शब्दजालं महारण्यं चित्तभ्रमणकारणम्''** अर्थात् शब्दजाल तो चित्त को भटकाने वाला एक महान वन है। असली बात तो शास्त्र के तत्व को जानना है। **''अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।''** अर्थात् परम् तत्व यदि न जाना तो शास्त्राध्ययन व्यर्थ ही है। वे पुन: कहते हैं कि तत्त्व न जानने से शास्त्रज्ञान, वाणी की कुशलता, व्याख्यान-कुशलता सभी भोग का ही कारण है।

वाग्वैखरी शब्द झरी शास्त्रव्याख्यान कौशलम्।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये॥

–जिस प्रकार वीणा का रूप-लावण्य तथा तन्त्री को बजाने का सुंदर ढंग मनुष्यों के मनोरंजन का ही कारण होता है, उससे कुछ साम्राज्य की प्राप्ति नहीं हो जाती; उसी प्रकार विद्वानों की वाणी की कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र-व्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता भोग ही का कारण हो सकती है, मोक्ष का नहीं।

अर्थात् सद्गुरु का केवल श्रोत्रिय होना ही यथेष्ट नहीं है, उन्हें ब्रह्मनिष्ठ भी होना चाहिए। अर्थात् जिन्होंने शास्त्रों के मर्म को जान लिया है एवं तदनुसार आचरण करके अपनी आत्मा को ब्रह्म में प्रतिष्ठित कर लिया है वे ही सद्गुरु होने का दावा कर सकते हैं।

रामचरित मानस में भी गोस्वामी जी उत्तरकाण्ड में कहते हैं।

श्रुति पुरान बहु कहेउ उपाई।
छूट न अधिक अधिक अरुझाई।

–''वेद और पुराणादि (धर्मग्रंथों) ने बहुत से उपाय बतलाये हैं, पर यह ग्रंथि छूटती नहीं वरन् अधिकाधिक उलझ जाती है।''

श्री रामकृष्ण देव कहते हैं–पेड़ गिनने से क्या लाभ, आम खाने चाहिए। ईश्वर लाभ ही जीवन का उद्देश्य है। ईश्वर लाभ होने पर शास्त्रों की आवश्यकता नहीं रहती अत: ईश्वर प्राप्ति ही शास्त्रों का मर्म है। जिसने ईश्वर प्राप्ति कर ली वही सद्गुरु होने योग्य है।

रामचरित मानस में गोस्वामी जी कहते हैं, **''रामहिं केवल प्रेम पिआरा। जानि लेहु सो जाननिहारा।''** वही ज्ञानी है जिसने यह जान लिया कि एक मात्र 'राम' ही प्रेम की वस्तु हैं और कुछ भी नहीं। उत्तर काण्ड में काकभुपुण्डि जी गरुड़ जी को धर्मशास्त्रों का मर्म समझाते हुए कहते हैं–

श्रुति सिद्धान्त इहइ उरगारी।
राम भजिअ सब काज बिसारी।

–श्रुतियों का सिद्धान्त यह है कि सब काम भुला कर (छोड़कर) श्रीराम जी का भजन करना चाहिए।

श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं।
रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥

–श्रुति पुराण और सभी ग्रंथ कहते हैं कि श्री रघुनाथ जी की भक्ति के बिना सुख नहीं है।

फिर गोस्वामीजी अपना मत देते हुए कहते हैं,

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽति दुस्तरं तरन्ति ते॥

–मैं अपने भली भाँति निश्चित किया हुआ सिद्धान्त कहता हूँ–मेरे वचन अन्यथा (मिथ्या) नहीं हैं कि जो मनुष्य हरि भजते हैं, वे अत्यन्त दुस्तर संसार सागर को (सहज ही) पार कर जाते हैं।

अत: गोस्वामी जी के मतानुसार भवसागर से पार होना ही सब धर्म शास्त्रों का प्रयोजन और जीवन का

लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति हरि के भजन से ही सम्भव है। उनके मत में यह निश्चित सिद्धान्त है। तो गोस्वामी जी के मत में धर्मग्रन्थों के मर्मज्ञ तो उनको कह सकते हैं जिन्होंने हरिभजन को ही सत्य माना है और हरिभजन के द्वारा भवसागर पार कर लिया है तथा सारे जगत को स्वप्नवत् मिथ्या माना है।

उमा कहहूँ मैं अनुभव अपना
सत हरिभजन जगत सब सपना ॥

–हे उमा ! मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि केवल हरि का भजन ही सत्य है (सब धर्मग्रंथों का निचोड़ है) और यह समस्त जगत मिथ्या है।

दूसरी शर्त

स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं कि, 'गुरु के लिए दूसरी बात आवश्यक है–निष्पापता। गुरु के सम्बन्ध में हमें यह जान लेना होगा कि उनका चरित्र कैसा है: और तब फिर देखना होगा कि वे कहते क्या हैं।---अध्यात्म विज्ञानों में अपवित्र आत्मा में लेशमात्र भी धर्म का प्रकाश रह सकना असंभव है। एक अपवित्र व्यक्ति हमें क्या धर्म सिखाएगा ? आध्यात्मिक सत्य की उपलब्धि करने और दूसरों में उसका संचार करने का एक मात्र उपाय है–हृदय और मन की पवित्रता। उन्हें पूर्ण रूप से शुद्ध होना चाहिए, तभी उनके शब्दों का मूल्य होगा, क्योंकि केवल तभी वे सच्चे संचारक हो सकते हैं। यदि स्वयं उनमें आध्यात्मिक शक्ति न हो तो वे संचार ही क्या करेंगे ?" (वि०सा० IV-२२-२३ पृष्ठ)

अर्थात् पाप रहित होना अत्यन्त आवश्यक है। स्वामीजी के अनुसार पापी तो वही है जो स्वार्थी है और जो स्वार्थी है वही अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए झूठ, कपट, छल का आश्रय लेता है। अत: ऐसा मन कभी ईश्वर प्राप्ति नहीं कर सकता। पापरहित तो वह है जो सदा सर्वदा दूसरों के कल्याण की भावना रखे। वह नि:स्वार्थी होता है। अत: उसे झूठ, कपट, छल का प्रयोजन ही नहीं। वह निर्मल मन वाला है। भगवान राम कहते हैं :

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

–मुझे कपट, छल आदि नहीं सुहाता। अत: जो निर्मल मन वाला है, वही मुझे प्राप्त करता है।

ईसा मसीह ने भी इस सिद्धान्त पर बहुत जोर दिया है "Blessed are the pure in heart for they shall see God." पवित्रात्माएँ धन्य हैं क्योंकि वे ईश्वर को देख सकेंगी।

जो अपवित्रात्माएँ हैं उन्हें ईश्वर दर्शन तो दूर की बात ईश्वर सम्बन्धी चर्चा भी नहीं सुहाती। वे तो ईश्वर प्राप्ति कर ही नहीं सकते। रामचरितमानस में कहते हैं।

अतिखल जे विषई बग कागा।
एहि सर निकट न जाहिं अभागा।

–जो अतिदुष्ट और विषयी हैं वे अभागे बगुले कौए हैं जो इस सरोवर के समीप नहीं जाते।

संबुक भेक सेवार समाना।
इहाँ न विषय कथा रस नाना ॥

क्योंकि यहाँ (आध्यात्मिक जगत में–रामचरित मानस सरोवर में) घोंघे, मेंढक और सेवार के समान विषय रस की नाना कथाएँ नहीं हैं।

यदि कहें कि यदि दोनों रस-विषय रस और आध्यात्मिक रस मिलाकर रखें तो सम्भवत: सभी आना चाहेंगे तो गोस्वामी जी कहते हैं,

जहाँ काम तहाँ राम नहिं जहाँ राम नहीं काम।
तुलसी कबहुँक हो सकै रवि रजनी इक ठाम ॥

अर्थात् जहाँ विषय कामनाएँ हैं वे मन को मलीन करके रखती हैं और मलीन मन में ईश्वर का निवास नहीं हो सकता। तुलसीदास जी कहते हैं कि जिस प्रकार सूर्य और रात (अंधकार) दोनों एक जगह नहीं रह सकते: उसी प्रकार 'राम' और 'काम' एक जगह एक साथ नहीं रहते। अत:

सकल कामनाहीन जे राम भगति रस लीन
नाम सुप्रेम पियूष हद तिन्हहुँ किए मन मीन

जो सब प्रकार कामनाओं से रहित होकर राम भक्ति के रस में लीन रहते हैं, उन्होंने नाम के सुन्दर प्रेमरूपी अमृत सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है।

कामगन्ध–शून्य व्यक्ति ही ब्रह्मानन्द या रामानन्द सागर में गोते लगाते हुए आनन्दमय हो जाते हैं, केवल वे ही दूसरों को कामगन्ध शून्य कराकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करा सकते हैं। अर्थात् गुरु होने के लिए काम गन्धशून्य होना-निष्पाप होना अनिवार्य है।

तीसरी शर्त

स्वामीजी ने कहा है कि, "तीसरी बात आवश्यक है गुरु को धन, नाम या यश सम्बन्धी स्वार्थ-सिद्धि के हेतु धर्म-शिक्षा नहीं देनी चाहिए। उनके कार्य तो

केवल प्रेम से, सारी मानव जाति के प्रति विशुद्ध प्रेम से ही प्रेरित हों।

भगवान प्रेम स्वरूप है, और जिन्होंने इस तत्व की उपलब्धि कर ली है, वे ही मनुष्य को शुद्ध सत्त्व होने और ईश्वर को जानने की शिक्षा दे सकते हैं।

(वि० सा० IV-पृ० २३)

जिस प्रकार विद्युत तार में जंग लग जाए या अन्य कोई बाधा (resistance) आ जाय तो विद्युत प्रवाह रुक जाता है या न्यूनतम हो जाता है; उसी प्रकार धन, नाम और यश यदि गुरु और शिष्य के बीच उपस्थित हों तो धर्मशक्ति के प्रवाह में जंग या resistance का कार्य करते हैं। अर्थात् जो धन के लोभ से धर्म शिक्षा देता है, वह तो धन लोभ के कारण नरकगामी होता है।

रामचरितमानस में गोस्वामी जी कहते हैं,

हरइ शिष्य धन सोक न हरई ।
सो गुर घोर नरक महुँ परई ॥

—जो शिष्य से धन तो लेता है पर धर्म प्रवाह नहीं कर पाता, उसके शोक मोह का निवारण नहीं कर सकता वह तो नरक में पड़ता है।

राज्य के लोभ और शत्रुता के कारण या चक्रवर्ती राजा होने की नाम यश की लालसा से कपट मुनि राजा प्रताप भानु को धर्मोपदेश करने लगा।

करम धरम इतिहास अनेका ।
करइ निरूपन बिरति बिबेका ॥

—कर्म धर्म और अनेक प्रकार के इतिहास कहकर वह (कपटी मुनि) वैराग्य और विवेक का निरूपण करने लगा।

ऐसे कपटी मुनि के उपदेश से तो शिष्य का भी अकल्याण ही होता है।

सद्गुरु की इस तीसरी शर्त की पूर्ति करने वाला चरित्र तो हमें ऋषिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण जी का मिलता है। उन्हें तो संसार की किसी वस्तु की कामना ही नहीं। प्रभु स्वयं वर देने आ जाएँ तो भी मन में कुछ माँगने की इच्छा ही नहीं होती। वे तो सर्वदा भगवद् प्रेम में विभोर रहते थे।

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी ।
कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥

भगवान शंकर कहते हैं कि हे भवानी। ज्ञानी मुनि प्रेम में पूर्णरूप से निमग्न हैं। उनकी वह दशा कही नहीं जाती।

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा ।
को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई ।
कबहुँक नृत्य करइ गुण गाई ॥

—'उन्हें दिशा-विदिशा और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मैं कौन हूँ ? और कहाँ जा रहा हूँ ? यह भी नहीं जानते। वे कभी पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी गुण गा-गाकर नाचने लगते है।

''अविरल प्रेम भगति मुनि पाई।''

—मुनि ने प्रगाढ़ भक्ति प्राप्त कर ली।

जब भगवान श्रीराम ने उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर वर माँगने के लिए कहा तो सुतीक्ष्णजी ने अपने मन को टटोला तो उन्हें यह समझ में न आया कि क्या माँगना चाहिए अर्थात् कोई चाह ही उनके मन में नहीं थी। धन, नाम, यश यहाँ तक कि मोक्ष की भी चाह उन्हें नहीं थी। सारे विश्व की वस्तुएँ इहलोक और परलोक के प्रलोभन उन्हें तुच्छ प्रतीत होते थे। अत: उन्होंने कहा—

तुम्हहि नीक लागै रघुराई ।
सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥
अविरल भगति बिरति बिग्याना ।
होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥

हे रघुनाथजी ! दासों को सुख देने वाले ! आपको जो अच्छा लगे मुझे वही दीजिए। (श्री रामचन्द्रजी ने कहा—हे मुनि !) तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों और ज्ञान के निधान हो जाओ।

सुतीक्ष्णजी ने देखा कि प्रभु ने जो वरदान दिया वह तो मुझे मिल ही गया। परन्तु इन सब में तो नाम और यश की प्राप्ति की सम्भावना है। अत: उन्हें यह रुचिकर न लगा। वे बोले—

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा ।
अब सो देहु मोहि जो भावा ॥
अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निह काम ॥

—हे प्रभो ! श्रीराम जी के छोटे भाई लक्ष्मण जी और जानकी जी सहित धनुषबाणधारी आप निष्काम (स्थिर होकर) मेरे हृदयरूपी आकाश में चन्द्रमा की भाँति सदा निवास कीजिए।

इस प्रकार के मन वाला व्यक्ति ही सद्गुरु होने की तीसरी शर्त पूरी कर सकता है।

शेष पृष्ठ ३१ पर देखें

महावीर की अहिंसा

डॉ० श्रीरंजन सूरिदेव
-पटना

भगवान् महावीर का समग्र जीवन-दर्शन या जीवन-संस्कृति मुख्यतया अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त की त्रयी पर आधृत है। दृष्टि-निपुणता तथा सभी प्राणियों के प्रति संयम ही अहिंसा है। दृष्टि-निपुणता का अर्थ है सतत जागरुकता तथा संयम का अर्थ है मन, वाणी और शरीर की विलोम क्रियाओं का नियमन। जीवन के स्तर पर जागरुकता का अर्थ तभी साकार होता है, जब उसकी परिणति संयम में हो। संयम का लक्ष्य तभी सिद्ध हो सकता है, जब उसका जागरुकता से सतत दिशा निर्देश होता रहे। लक्ष्यहीन और दिग्भ्रष्ट संयम अर्थहीन कायलेशमात्र बनकर रह जाता है। समाजगत शुचि और अशुचि की अवधारणा के मूल में यही संयम या नियम भ्राम्र अर्थ में समाविष्ट है।

किन्तु, यहाँ स्मरणीय है कि ब्राह्मण संस्कृति के संयम-नियम या नेम-धरम से श्रमण संस्कृति का संयम आजकल प्राय: विलास-वैभव या व्यक्तिगत आभिजात्य के अभिमान की भावना से उत्पन्न शुचि-अशुचि की अवधारणा में बदल गया है। इससे समाज में गरीब-अमीर, ऊँच नीच और स्पृश्यास्पृश्य, यानी छूत-अछूत जैसे हिंसावादी या अलगाववादी वर्गभेद को परिपोषण मिल रहा है। किन्तु भगवान महावीर की श्रमण-संस्कृति के संदर्भ में ज्ञानदृष्टि के आधार पर जीवन-चर्या का संयमन ही तात्विक संयमन है।

महावीर ने अपने अहिंसा सिद्धांत द्वारा संपूर्ण मानव-समाज को एकता का संदेश दिया। उन्होंने कहा जन्म से कोई किसी जाति का नहीं होता, कर्म से उसकी जाति का निर्धारण होता है (उत्तराध्ययन सूत्र)। अर्थात् कर्म की शुचिता और अशुचिता के आधार पर ही किसी मनुष्य की उच्चता और नीचता निर्भर होती है। प्रत्येक प्राणी, चाहे वह छोटा-सा कीड़ा ही क्यों न हो, आत्मसत्ता के स्तर पर समान है। उसमें अंतर्निहित संभावनाएँ समान हैं।

महावीर के अपरिग्रह तथा अहिंसा का सिद्धांत आर्थिक विकास और वर्त्तमान समाज की आकांक्षाओं को ऊपर उठाने में अधिकाधिक साधक सिद्ध हो सकता है। किसी के जीवनाधिकार का अतिक्रमण न करना अहिंसा है। जीवन का अधिकार जीवन के तीन प्रमुख साधनों-भोजन, वस्त्र और आवास की समस्याओं से सम्पृक्त है। इन साधनों के बिना जीवन की सत्ता कायम नहीं रह सकती। इसलिए महावीर की दृष्टि में तात्कालिक प्रात्यहिक आवश्यकता से अधिक संग्रह करना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि इससे दूसरे लोग वंचित होते हैं। जीवन का अतिक्रमण अर्थ के स्तर पर ही नहीं, भावना औ विचार के स्तर पर भी होता है। अपने विचारों को दूसरों पर बलात् लादकर उन्हें तदनुकूल चलने के लिए बाध्य करना भयावह हिंसा है। है तो यह भावहिंसा, किन्तु इसका दुष्प्रभाव द्रव्यहिंसा से भी अधिक तीव्र होता है और भावहिंसा ही अन्ततोगत्वा द्रव्यहिंसा में बदल जाती है।

विशेपतया धर्म के नाम पर धर्म के प्रकार की हिंसा बहुधा होती रहती है। अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत की त्रयी में अहिंसा सुमेय की तरह प्रतिष्ठित है। महावीर का संपूर्ण धर्मचक्र मूलत: अहिंसा की धुरी पर ही घूमता है। महावीर द्वारा प्रवर्त्तित जैनधर्म-दर्शन का सीधा संबंध अहिंसा की व्यापक लोक-प्रतिष्ठा से

जुड़ा हुआ है और जिसका एकमात्र उद्देश्य अहिंसामूलक सामाजिक क्रांति से संबद्ध है।

अहिंसा जैनधर्म की आधारशिला है। जैन चिंतकों ने अहिंसा का सामाजिक उत्कर्ष के संदर्भ में जितनी गंभीर सूक्ष्मेक्षिका से विचार और विश्लेषण किया है, उतनी सूक्ष्म दृष्टि से किसी अन्य सम्प्रदाय के विचारकों ने कदाचित् ही चिंतन किया हो। महावीर की अहिंसा का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। वह अहिंसा केवल जैनों के धर्म तक ही सीमित नहीं है, अपितु उसका चिंतन समग्र भारतीय समाज के जन-जीवन को दृष्टि में रखकर किया गया है। इस प्रकार। जैनधर्म वस्तुतः जनधर्म है। भगवान महावीर के अहिंसा-तत्व के विवेचन में समाजवादी समाज रचना के अनिवार्य तत्व किसी न किसी रूप में अग्रर्निहित हैं। उन्होंने अपने अहिंसा-सिद्धांत के तात्विक चिंतन द्वारा सामाजिक क्रांति का युगान्तरकारी शंखनाद किया है। आज के समसामयिक जीवन में असुरक्षाबोध और अस्तित्व के संकट जैसी समस्याओं के समाधान के लिए महावीर के अहिंसा मूलक तत्व-चिंतन का उपयोग प्रभावकारी ढंग से किये जाने की आवश्यकता है। सम्प्रति, अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय और सामाजिक स्तर पर परस्पर आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की होड़ में मानवजीवन की परिस्थितियाँ जटिल से जटिलतर और भयावह होती जा रही हैं। मानव को मानव से भय हो गया है। वह एकदूसरे के विनाश के लिए अस्त्र-शस्त्रोंके संचय की आत्मविनाशी प्रतिद्वन्द्विता में उलझ गया है। प्राणघातक उपकरणों के संचय की यह प्रवृत्ति राष्ट्र के स्तर से व्यक्ति के स्तर पर उतर आई है। परिणामतः आज सर्वत्र व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के स्तर पर युद्ध और हिंसा की विस्फोटक स्थिति प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है।

ऐसी भयावह स्थिति से त्राण पाने का एक ही मार्ग है और वह है अहिंसा का मार्ग। अहिंसा द्वारा सामाजिक क्रांति का संदेश वहन करने वाले महान् समाजचिंतक वाणी का उद्घोष इस प्रकार किया है :

सव्वेपाणा पियाउआ सुहसाया,
दुक्खपडिकूला, अधियवहा।
पियजीविणो, जीविउकामा
सव्वेसिं जीवियं पियं।
(आचारांगः 2.2.3)

अर्थात् सभी जीवों का अपना आयुष्य प्रिय है। सुख अनुकूल है, दुःख प्रतिकूल है। वध सभी को अप्रिय प्रतीत होता है और जीना सबको प्रिय लगता है। सभी प्राणी जीवित रहने की कामना करते हैं। सभी को जीवन प्रिय है।

❑

पृष्ठ २९ का शेषांश—

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''जब देखो कि तुम्हारे गुरु में ये सब लक्षण मौजूद हैं, तो फिर तुम्हें कोई आशंका नहीं। अन्यथा उनसे शिक्षा ग्रहण करना ठीक नहीं, क्योंकि तब साधुभाव संचारित होने के बदले असाधु भाव के संचारित होने का बड़ा भय रहता है। केवल वही जो शास्त्रज्ञ, निष्पाप, कामगन्धहीन और श्रेष्ठ ब्रह्मविद् है सच्चा गुरु है।''

(वि० सा० IV-२३)

विवेक चूड़ामणि में श्रीमद्शंकराचार्य जी कहते हैं :

श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः ॥

विवेक चूड़ामणि ३४ ॥

ब्रह्मण्युपरतः शान्तो निरिन्धन इवानलः ।
अहैतुकदया सिन्धुबेन्धुरानमतां सताम् ॥३५॥
तमाराध्य गुरुं भक्त्या प्रह्वप्रश्रयसेवनैः ।
प्रसन्नं तमनुप्राप्य पृच्छेज्ज्ञातव्यमात्मनः ॥३६॥

'जो श्रोत्रिय हों, निष्पाप हों, कामनाओं से शून्य हों, ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ हों, ईंधन रहित अग्नि के समान शान्त हो, अकारण दयासिन्धु हों और शरणापन्न सज्जनों के हितैषी हों उन गुरुदेव की विनीत और विनम्र सेवा से भक्तिपूर्वक आराधना करके, उनके प्रसन्न होने पर उनके निकट जाकर अपना ज्ञातव्य (मोक्ष के उपाय या साधन) पूछे अर्थात् शिष्य को पूछना चाहिए। ❑

धार्मिक सद्भावना के प्रतीक गुरु गोविंद सिंह

डॉ० महीप सिंह

भारतीय इतिहास में गुरु गोविंद सिंह जैसा व्यक्तित्व बहुत विरल है। आज से ३३७ वर्ष पहले, उनका जन्म हुआ था। उन्हें कुल ४२ वर्ष की आयु प्राप्त हुई। उनके द्वारा किये गए कार्यों तथा उनकी आयु के इन थोड़े से वर्षों में ठीक से संगति बैठा पाना बहुत मुश्किल काम है। फिर जीवन-कार्य भी ऐसे जो अनेक विविधताओं को बड़े सहज ढंग से अपने अंदर समेट लेते हैं। वे गुरु नानक देव द्वारा स्थापित गुरु परम्परा के दसवें उत्तराधिकारी थे और इस प्रकार उन असंख्य लोगों के धर्मगुरु थे जो गुरु नानक के उपदेशों में अपने जीवन की सार्थकता ढूंढते थे। गुरु गोविंद सिंह की भक्तिपरक रचनाएँ एक प्रखर आध्यात्मिक पुरुष का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करती है।

इसी के साथ गुरु गोविंद सिंह एक योद्धा जन नायक भी थे। उन्होंने अपने समय के अत्याचारी शासकों के विरुद्ध पीड़ित और दलित जनता का संगठन बनाया और उन्हें अन्याय और दमन के विरोध में साहस पूर्वक खड़े होने की प्रेरणा दी। इस प्रेरणा के लिए उन्होंने साहित्य के महत्व को पूरी तरह समझा था। उनके अन्दर एक महान कवि की प्रतिभा थी, साथ ही उन्होंने अपने संरक्षण और निर्देशन में एक ऐसे साहित्य- दरबार का निर्माण किया जिसमें देश के अनेक भागों से आए ५२ कवियों ने ऐसे प्रेरणादायक और वीर रस पूर्ण काव्य का सृजन किया जो उस समय की सबसे बड़ी जरूरत थी।

गुरु गोविंद सिंह के योद्धा और राष्ट्र निर्माता रूप की चर्चा बहुत हुई है, परन्तु उनका एक और रूप है, जिसे उनके व्यक्तित्व का मूल रूप माना जा सकता है। इस रूप में वे धार्मिक सद्भावना की ज्योति जलाते हैं और मानव मात्र में अन्तर्निहित एकता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। वे बार-बार इस बात पर आग्रह करते हैं कि दृश्यमान जगत के इन अनेक अंगों-उपांगों के मूल में एक ही परम शक्ति निवास करती है। सब कुछ उसी से उत्पन्न होता है और अंत में उसी में समाहित हो जाता है–जैसे अग्नि की अनेक लपटें उसी में मिल जाती हैं, नदी की अनेक तरंगें उसी में से उठती हैं और उसी में विलीन हो जाती हैं। धूल के अनेक गुबार उत्पन्न होते हैं और फिर धूल में ही मिल जाते हैं। विश्वरूप भी ऐसा ही है। उसमें से अनेक रूप उत्पन्न होकर अंत में उसी में मिल जाते हैं, ''जैसे एक आग ते कनूका कोटि आग उठे, निआरे-निआरे हुई के फेरि आग में मिलाहिंगे। जैसे एक धूरते अनेक धूर पूरत है, धूर के कनूगा फेरि धूर ही समाहिंगे।। जैसे एक नद ते तरंग कोटि उपजत है, पानि के तरंग सबै पानि ही कहाहिगे। तैसे विस्वरूप से अभूत भूत प्रगट होई, ताही ते उपज सबै ताही में समाहिंगे।।''

गुरु गोविंद सिंह ने मनुष्य में कोई भेद कभी उसकी जाति, धर्म, रंग या परिवेश के कारण स्वीकार नहीं किया और न ही उन्होंने ईश्वर के विभिन्न नामों, धर्म स्थानों और पूजा पद्धतियों के अंतिम उद्देश्य में कोई अन्तर स्वीकार किया। भगवान के भक्त उसे अनेक नामों से स्मरण करते हैं फिर भी वह अनेक नहीं है। मानव जाति के अनेक वर्ग अपनी धार्मिक मान्यताओं के कारण उसे अनेक नामों से याद करते हैं और विभिन्न स्थानें में उसके अस्तित्व की कल्पना करते हैं। परन्तु इससे संसार के लोगों की अपनी मूलभूत एकता नष्ट नहीं होती। मनुष्य-मनुष्य में भी भेद दिखाई देता है। वह वातावरण के कारण है। जो ज्योति सभी में प्रकाशित हो रही है, वह तो एक ही है। गुरु गोविन्द सिंह के शब्दों में–

''कोऊ भयो मुंडिया संन्यासी कोऊ जोगी भयो, कोऊ ब्रह्मचारी कोऊ जति अनुमानबो। हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमाम शाफी, मानस की जात सबै एकै पहचानबो।। करता करीम सोई राजक रहीम ओई, दूसरो न भेद कोई मूल भ्रम मानबो।। एक ही की सेव, सभ ही को गुरूदेव एक-एक ही सरूप सबै एकै जोत जानबो।।'' जो व्यक्ति मानव मात्र की एकता में विश्वास करता है और उसके लिए वर्ग, जाति, भाषा, प्रान्त, देश का भेद

महत्वपूर्ण नहीं रहता, वह कहीं भी, किसी भी परिवेश में, किसी भी भाषा में अपने इष्टदेव का स्मरण करता है। वह जानता है कि अपना-पराया, मित्र-शत्रु आदि भेद संसार के लोगों ने खुद ही बनाए हैं, संसार का निर्माण करने वाली, उसका पोषण करने वाली परम शक्ति इन मनुष्य निर्मित भेदों से बहुत परे है। उस शक्ति का न कोई रूप है, न रंग है, न शत्रु है, न मित्र है। गुरु गोविंद सिंह के शब्दों में–

"जिह जात पात नहीं शत्रु मित्र ।
जिह नेह गेह नहीं चिह्न चित्र ॥
जिह रंग रूप नहीं राग रेख ।
जिह जनम जाति नहीं भरम-भेख ।"

परमात्मा किसी एक देश, धर्म या भाषा से बंधा हुआ नहीं है। एक ही समय में वह अरबी, तुर्की और फारसी भी है तथा पहलवी, पश्तो और संस्कृत भाषी भी है। उसकी अभिव्यक्ति देशज भावनाओं में भी होती है और देव वाणी में भी। इस भाव को अभिव्यक्ति करते हुए वे कहते है–

"कहूँ अरबी तोरकी पारसी हो ।
कहूं पहलवी पस्तवी संस्कृति हो ॥
कहूं देस भाखिआ कहूं देव वाणी ।
कहूं राज विद्या कहूं राजधानी ॥
कहूं मंत्र विद्या कहूं तंत्रसारं ।
कहूं जंत्र रीत कहूं सशस्त्र धारं ॥
कहूं होम पूजा कहूं देव अरचा ॥
कहूं पिंगुला वारणी गीत चरचा ॥"

मानवीय एकता और धार्मिक सद्भाव के लिए गुरु गोविंद सिंह ने अपनी काव्य भाषा में बड़े अभिनव प्रयोग किए। उसकी सुप्रसिद्ध रचना 'जापु' में भाषा का बहुविधि प्रयोग दिखाई देता है। कहीं वे संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का प्रयोग करते हैं, जैसे–

करुणालय हैं ॥ अरिघालय हैं ॥
खल खण्डन हैं ॥ महिमण्डन हैं ॥
अजपा जप हैं ॥ अथवा थप हैं ॥
अकृता कृत हैं ॥ अमृता मृत हैं ॥

परमात्मा की अनंता को जब हम सीमाओं में बांध देते हैं तो धार्मिक विवाद और असहिष्णुता को जन्म मिलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में सभी स्थानों पर परमात्मा की सर्वव्यापकता, अनेकरूपता-उस अनेक रूपता में अन्तर्निहित एकरूपता को चित्रित किया हैं ।

गुरु गोविंनद सिंह एकता के प्रचारक थे। उन्होंने विभेदक शक्तियों का विरोध किया और उन शक्तियों और तत्वों का सदा साथ दिया जो अनेक विभिन्नताओं में मानवीय एकता और सद्भाव के लिए प्रतिबद्ध हैं। उन्होंने बाहरी वेषभूषा और पूजा पद्धति को धर्म का आधार नहीं बनाया। उनकी दृष्टि में ये सभी एक ही दिशा की ओर जाते हैं।

उन्हें इन सभी में एक ही स्वरूप और एक ही बनाव के दर्शन होते है–

"देहरा मसीत सोई पूजा और निवाज ओई,
मानस सबै एक पै अनेक की भ्रमाउ है।
देवता अदेव जच्छ, गन्धर्व तुरक हिन्दू,
निआरे-निआरे देसन के भेस को प्रभाउ है ॥
एकै नैन एकै कान एकै देह एकै बान ॥
खाक वाद आतश और आब को रलाउ है।
अल्लाह अभेषु सोई पुरान और कुरान ओई।
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है।"

३०० वर्ष पहले जिस 'खालसा' का उन्होंने सृजन किया उसमें उन्होंने एक पूर्ण पुरुष की कल्पना की।

❑

सब कुछ भगवान् को समर्पित कर दो, स्वयं को भी समर्पित कर दो। ऐसा करने पर फिर तकलीफ नहीं रह जाएगी। तब तुम देख पाओगे कि सब कुछ उन्हीं की इच्छा से हो रहा है।

–श्री श्रीरामकृष्ण देव

विवेकानन्द साहित्य : अध्ययन का प्रयोजन

—एक साधु, छपरा

स्वामी विवेकानन्द, विवेकानन्द साहित्य के माध्यम से हमें किसी भी विचार को बिना सोचे समझे स्वीकार करने को नहीं कहते। इतना ही नहीं, वे अपनी स्वयं की वाणी को भी बिना सोचे-समझे स्वीकार करने को नहीं कहते। वरन् वे अपनी वाणी के प्रति भी सभी को अपनी वैचारिक शक्ति का उपयोग करने का आह्वान करते हैं। स्वामी जी कहते हैं कि ऐसा करने से आप देखेंगे कि आप अपने भीतर स्वतंत्रता एवं समानता का अनुभव करते हैं या नहीं। और इन सबके पीछे जो शक्ति का स्रोत है उसे, आप दिव्यता या आत्मा के रूप में जान सकते हैं। इस प्रकार आन्तरिक ऊर्जा की अधिकतम शरण लीजिए और बाहरी सहायता के अवलम्बनों को न्यूनतम कीजिए।

आप उन शब्दों में विश्वास करें या नहीं, आप उसे गम्भीरता से लें या नहीं, आप उन शब्दों की गहराई में जाएँ या नहीं, विवेकानन्द साहित्य रूपी विशाल समुद्र आपको एक वीर योद्धा की भाँति आपके दैनिक जीवन की समस्याओं का सामना करने की अटूट शक्ति एवं अदम्य साहस प्रदान करता है। यह आपमें छिपी कायरता एवं मिथ्या आडम्बर को दूर कर देगा और जहाँ से संपूर्ण विश्व का दृश्य-पटल आपको एक छोटे बच्चे के खेल की भाँति प्रतीत होगा उस स्तर पर आपको स्थापित करेगा।

तो क्या विवेकानन्द साहित्य, जीवन की वास्तविकता को अपने नए ढंग से रखता है ? क्या उसे सदियों पुरानी भारत की शास्त्र दर्शनीय पद्धति से कोई लेना-देना नहीं है ?

जी नहीं, ऐसा नहीं है। आप विवेकानन्द साहित्य में गीता, उपनिषद, मनुसंहिता, विवेक-चूड़ामणि इत्यादि ग्रन्थों के विचार प्रचुर रूप में पाएँगें। इतना ही नहीं, कई जगह आप लेखक को प्राचीन ऋषि-मुनियों के विचारों के साथ एकत्व प्राप्त कर चुका भी पाएँगे।

फिर भी मनुष्य इनसे सन्तुष्ट नहीं होता है। वह एक चिन्तक एवं तटस्थ व्यक्ति की भाँति ही अपने ही विश्वास के बल पर आगे बढ़ना चाहता है। क्या उन लोगों की पिपासा विवेकानन्द साहित्य तृप्त कर सकता है ? अवश्य, ऐसे बहुत सारे विचार हैं जो उन्हें निश्चय ही प्रेरणा देंगे।

लेकिन इसके लिए आपको विवेकानन्द साहित्य का खुले मन से अध्ययन करना होगा। यानी इस विवेकानन्द साहित्य से आप महत्तम रूप से लाभान्वित होंगे। पर पहले आपको सभी पूर्वनिर्धारित विचारों से विमुक्त होना होगा। वह एक माता के सदृश समयानुसार आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति करता रहेगा।

वर्तमान नारी, विरोध का स्व प्रकट करती है और कहती है कि भारतीय इतिहास में स्त्रियों का कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं। पुरुष हर समय उन्हें अपने अधीन रखकर उनसे दासी एवं गुलामों की भाँति अपनी सेवाएँ करवाता रहा।

लेकिन विवेकानन्द साहित्य में इसका खण्डन करते हुए स्वामी विवेकानन्द अपने दो व्याख्यानों में स्त्रियों के आदर्श एवं उनके उज्ज्वल भविष्य के बारे में विस्तार से चर्चा करते हैं। इतना ही नहीं, भविष्य में समाज में स्त्री का नया योगदान होगा, इस बारे में भी स्वामीजी ने विस्तारपूर्वक चर्चा की है।

और इन दिनों धार्मिक जगत् में जिनक[illegible] सर्वोपरि है उन श्रीरामकृष्णदेव के बारे में क्या ? क्या वे सिर्फ एक मन्दिर के पुजारी या गृहस्थ थे जो कि सांसारिक कामनाओं से मुक्त थे ? क्या उन्होंने मात्र सगुण या निर्गुण ईश्वर का प्रचार किया है ? क्या उन्होंने सभी को इस संसार का त्याग करने को कहा है ? कहाँ तक कोई मनुष्य उनके जीवन का अनुसरण कर सकता है ? क्या उन्होंने वैदिक परम्परा की पुनः स्थापना की थी ? उन सभी प्रश्नों का प्रत्यक्ष या परोक्ष उत्तर विवेकानन्द साहित्य का विस्तृत अध्ययन करने से प्राप्त होता है।

एक श्रमिक जानना चाहता है कि उसके पूर्वजों ने भी उसी की भाँति इतना कठोर परिश्रम का बोझ उठाया था जबकि धनी लोग उसके श्रम का

महत्वपूर्ण हिस्सा अपने मुनाफे के रूप में ले जाते थे। क्या उसके पूर्वजों ने भारतवर्ष के पूर्णविकास में कोई महत्वपूर्ण योगदान दिया था ? या क्या उन्हें भविष्य में अपने राष्ट्र के विकास में कोई महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी ?

इन सभी प्रश्नों का उत्तर हमें विवेकानन्द साहित्य में मिलता है जो इन श्रमिकों के जीवन में एक नई आशा की किरण जगाता है।

एक इतिहासकार जानना चाहता है कि क्या प्राचीन भारत, वर्तमान भारत की भाँति अन्य देशों से औद्योगिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ था ? क्या हमारे पास भी ऐसी सांस्कृतिक धरोहर थी, जिसने पूरे विश्व की सांस्कृतिक सभ्यता में अपना योगदान दिया हो ? हमारे इन प्रश्नों का समाधान विवेकानन्द साहित्य के द्वारा प्राप्त होता है।

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में हामरी संस्कृति का योगदान काफी महत्वपूर्ण रहा था एवं आने वाली पीढ़ी को भी उसी तरह अधिकाधिक योगदान देना होगा ।

उत्तर भारत के अवतारों, संतों एवं प्रचारकों जैसे राम, कृष्ण, बुद्ध, कबीर, तुलसीदास, तुलसीदास, ज्ञानदेव, समर्थ रामदास इत्यादि का प्रभाव सदियों तक भारतवर्ष की जनता पर रहा। उनकी दार्शनिकता एवं उनका जीवन, वर्तमान भारत के लोगों को उनके आध्यात्मिक जीवन एवं परिवर्तित सामाजिक जीवन में किस रूप में सहायक हो सकता है ? इन सभी जिज्ञासाओं की तृप्ति के लिए विवेकानन्द साहित्य का अध्ययन करना चाहिए।

एक विवादग्रस्त विषय जिसके बारे में भारत का एक वैचारिक मनुष्य भी कई बार एकतरफा निर्णय ले लेता है, वो है ब्राह्मण एवं अब्राह्मण की जाति तय करना। समाज का एक वर्ग कहता है कि जो ब्राह्मण वंश में जन्मा है उसके संस्कार अच्छे होते हैं एवं वो कुछ भी अच्छा कार्य करने हेतु जो आवश्यकताएँ होती हैं उसे अपने परिवार से आनुवंशिक रूप में प्राप्त करता है। ब्राह्मण परिवार में जन्मा हुआ बालक बुद्धिमान एवं चरित्रवान होता है। जबकि समाज का दूसरा वर्ग इस मत को पूरी तरह से खंडित करता है एवं युक्ति देता है कि कोई भी मनुष्य बुद्धिमान एवं चरित्रवान बन सकता है यदि वह पवित्र एवं अपने आप में विश्वास रखने वाला है। इसके लिए उसने किस जाति में जन्म लिया है, यह आवश्यक नहीं है।

इन सभी विवादित समस्याओं का समाधान हमें विवेकानन्द साहित्य में प्राप्त होता है।

भारतवर्ष अब समस्त विश्व से अलग नहीं रहा बल्कि वह बौद्धिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों में समस्त विश्व के आकर्षण का विन्दु वन चुका है। प्रतिवर्ष हजारों संख्या में यूरोपीय, अमरिकावासी एवं विश्व के विभिन्न लोग अपने मन की शान्ति के लिए भारतवर्ष की भूमि पर आते हैं।

हमें उनको किस प्रकार का आध्यात्मिक मार्गदर्शन, सांस्कृतिक मार्गदर्शन कराना चाहिए इसकी शिक्षा हमें विवेकानन्द साहित्य से प्राप्त होती है।

एक वैज्ञानिक मनुष्य कभी भी रूढ़िवादी धर्म को नहीं मानता है। वह सबकी सत्यता जाँचना चाहता है। धर्म के बारे में वह बार-बार निष्फल होता है। प्रत्येक धर्म का नेता कहता है–"यह किताब पढ़ो, और विश्वास रखो कि इस पुस्तक में से आपको जो कुछ भी मिलता है, धर्म के बारे में वह ही सही है। हमारे गुरु से भेंट कीजिए उनके सामने नतमस्तक होइए इत्यादि।

क्या धर्म के सभी दरवाजे उस व्यक्ति के लिए बंद हो चुके हैं जो इन सब प्रणालियों का अनुसारण नहीं करता ? इस तरह के प्रश्नों का उत्तर भी विवेकानन्द साहित्य से ही उसे मिलता है। ❑

> जो धर्म गरीबों का दुःख नहीं मिटाता, मनुष्य को देवता नहीं बनाता, वह भी क्या धर्म है ? वास्तव में सब धर्म एक ही 'चिरन्तन धर्म' के अभिन्न अंग हैं।
>
> –स्वामी विवेकानन्द

एक सपना

–श्रीमती डॉ० संध्या तिवारी
पीलीभीत

''ये क्या जगह है दोस्तो, ये कौन सा दयार है
हमे निगाह तक जहाँ गुबार ही गुबार है''

''केवल शिक्षा ! शिक्षा ! शिक्षा ! यूरोप के बहुतेरे नगरों में घूमकर और वहाँ के गरीबों के भी अमन चैन और शिक्षा को देखकर अपने गरीब देशवासियों की याद आती थी और मैं आँसू बहाता था। यह अन्तर क्यों हुआ ? उत्तर में पाया कि शिक्षा से। शिक्षा और आत्म- विश्वास मे उनका अन्तरनिहित ब्रह्मभाव जाग गया है, जब कि हमारा ब्रह्मभाव क्रमशः निद्रित- संकुचित होता जा रहा है।''

स्वामी विवेकानन्द द्वारा उपर्युक्त पंक्तियाँ सरला घोषाल को लिखी गयी थीं। आज इन पंक्तियों की कितनी प्रासंगिकता है जब कि चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। गुजरात के दंगे, कश्मीर के दंगे, प्राकृतिक आपदाएँ सभी कुछ मानव को ग्रस्त किये हुए हैं। आज के तथाकथित बुद्धिवादी लोग, शिक्षित जन आध्यात्मिकता तथा धार्मिकता को नकार कर एक ऐसे धर्मोन्माद में डूब गये हैं जहाँ केवल प्रकृति का न्याय ही उनके लिए शेष बचता है। क्या स्वामी जी ने इसी शिक्षा और ऐसे ही शिक्षित लोगों का सपना देखा था ? क्या उन्होंने ऐसे ही भारत के लिये देश विदेश की धूल छानी थी ?

शिक्षा का अर्थ यह कदापि नहीं कि हम जीवन मूल्यों को ही भुला दें। स्वाधीनता के नाम पर उच्छृंखलता, साहस के नाम पर मासूम लोगों की हत्या-क्या यही है आर्य जाति और आर्य धर्म ?

आज स्थिति कुछ भी क्यों न हो पर पिछले दिनों बीसवीं सदी का समूचा ताना-बाना, रूसों के प्रजातन्त्र, मार्क्स के साम्यवाद,नीत्से के नास्तिकवाद तथा फ्रायड के दर्शन को लेकर बुना गया है। इन्हीं चारों के आदर्श हमारे पढ़े लिखे लोगों में समाये हुए हैं। ऐसा नहीं कि इसका विरोध न हुआ हो, परन्तु कुछ कारण ऐसे हैं जो कि इन मनीषियों के दिये गये जीवन मूल्य सभी पर हावी हो गये। राज तन्त्र की जड़ें उखाड़ कर प्रजातन्त्र आ गया और अब अज्ञ और अनुत्तरदायी लोगों के हाथों में वोट का अधिकार चला गया तथा सत्ता में अवांछनीय लोगों की भरमार हो गयी। समाज तथा सत्ता धिकारी दोनों ही अपने पवित्र उद्देश्य मे भटक गये।

मार्क्सवाद का साम्यवाद अभाव ग्रस्त लोगों को बहुत पसन्द आया। ''गरीबो ! तुम्हें साम्यवादी बनकर केवल गरीबी खोनी है।'' ऐसा सपना गरीबों की आँखों का तारा बन गया और गरीब अमीर बनने की लालच में साम्यवाद के समर्थक बन गये। ऊपर से देखने में यह बहुत अच्छा लगा, लेकिन समय बदलते देर नहीं लगती। व्यक्ति को शासन का मूक-बधिर गुलाम बनाकर जिस प्रकार अनुगमन के लिए प्रताड़ित होना पड़ा है उस लोमहर्षक दबाव के कारण लोक-चेतना भयाकुल होकर थर्रा उठी। साम्यवादी बनने का मतलब है व्यक्तिगत चेतना की समाप्ति और इससे मिली बौद्धिक अपंगता।

प्रजातन्त्र और साम्यवाद की तरह ही तीसरी प्रचण्ड विचार धारा नास्तिकवाद की है। जिसने बुद्धिवाद को बहुत प्रभावित किया। नास्तिकवादी के लिए न तो पाप के दण्ड से डरने की जरूरत रह जाती है और न पुण्य परमार्थ का कुछ आकर्षण रहता है। आत्मा का अस्तित्व अस्वीकार करने और शरीर की मृत्यु के साथ आत्यन्तिक मृत्यु हो जाने की मान्यता उसे यही सुझाव देती है कि जब तक जीना हो तबतक अधिक[illegible] मौज-मजा किया जाना चाहिये।

आत्मा और परमात्मा की मान्यता मनुष्य के चिन्तन और कर्तव्य को एक रीति नियम के अन्तर्गत बहुत हद तक जकड़े रहने में सफल होती है। इन दार्शनिक बन्धनों को उठा लिया जाय तो मनुष्य की पशुता कितनी प्रबल हो सकती है इसके ताजा उदाहरण गुजरात के मन्दिर के दंगे तथा राजधानी एक्सप्रेस कांड हैं।

और रही सही कमर पूरी कर दी फ्रायड के मनोविज्ञान ने। जहाँ हमारा दर्शन पातञ्जलि योग-विज्ञान पर आरूढ़ होकर मन को काबू करने के उपाय सिखाता है वहीं फ्रायड का मनोविज्ञान मन मर्जी का करने का रास्ता सुझाता है। हमारे-पंतञ्जलि ऋषि कहते हैं कि इच्छाएँ वासनाएँ भोगों के द्वारा तृप्ति को नहीं प्राप्त

कर सकती हैं, और फ्रायड कहता है कि इच्छाओं को खुला छोड दो। वे भोग भोग कर स्वंय ही तृप्त हो जायेंगी।

आज की शिक्षा स्वामी जी का सपना कैसे बन सकती है ? आज की शिक्षा तो स्वार्थमय राजनीति के स्थाई स्तम्भों पर खड़ी है। नैतिकता ही आध्यात्मिकता की पहली सीढ़ी है। हा ! हा ! धिक्कार है, ऐसे प्रगतिवादी युग को, जहाँ मानवीय संवेदनाएँ पनपने से पहले ही नोंच कर नष्ट भ्रष्ट कर दी जाती हैं। समाज की प्रथम इकाई घर से लेकर विश्व तक आज पाशविक आग में जल रही है और इक्कीसवीं सदी में जाने का दावा ठोंक रही है। मेरे ठाकुर श्रीरामकृष्ण परमहंसजी जिन्होंने अनपढ़ होकर सर्वधर्म समभाव स्थापित किया और रहा-बचा कार्य अपनी अनुकृति स्वामी विवेकानन्द जी पर छोड़ गये अर्थात् गुलाम जाति को स्वाधीन बनाना और उसमें शिक्षा का प्रचार, प्रसार करना।

स्वामी जी ने अपनी पूरी शक्ति से अपने गुरु देव की आज्ञा का पालन किया। लेकिन सदियों की गुलामी ने आर्य जाति से उसका स्वाभिमान छीन लिया। आज भी शिक्षा के नाम पर हम विदेशों की डिग्री को उच्च मानते है। आज पाश्चात्य विद्वान योगों को पेटेंट कराते है, हल्दी, नीम, आदि का एकाधिकार चाहते हैं। और हम अपने आदर्शो को ताक पर रखकर उनके आदर्शो संस्कारो को सिर माथे चढ़ाते हैं।

हमारी एकाग्रता और संगठित न रहने के कारण आतंकियों ने हमारे समाज की जड़े हिला दीं। स्वतन्त्रता के केवल ५५ वर्ष बाद ही हम पाश्चात्य उद्योगों की चपेट में आ गये। क्या सो रहे हैं हम ? क्या हमने सैकड़ों साल गुलाम रह कर भी आजादी की कीमत नहीं पहचानी ?

आज तो शिक्षा का काफी प्रसार हुआ है, फिर भी कायर, धूर्त, लम्पट, स्वार्थी ही यत्र-तत्र सर्वत्र दीख रहे हैं। तो क्या इसी शिक्षा का स्वप्न स्वामी जी ने देखा था ? अपने देश और देशवासियों को गर्व से देदीप्यमान उज्ज्वल चरित्र, दृढ़ शरीर, बलिष्ठ ओज पूर्ण मस्तिष्क तथा कोमल हृदय। "शायद क्या, निश्चय ही ऐसा स्वप्न देखा था स्वामी जी ने।"

तो क्या हम शिक्षा के आलोक में ऐसा बन पाये हैं ? हम स्वंय के अन्दर झाँक कर यदि यह प्रश्न पूछेंगे तो शायद स्वंय को स्वंय का मुख नहीं दिखा पायेंगे। ❑

स्वामी विवेकानन्द के प्रति

–डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण

अन्तर्मन में जलता तेरे, शुभ चिन्तन का निर्मल प्रकाश
अवगुण्ठित मन को खोल, किया मानवता का उज्ज्वल विकास

थे रामकृष्ण के मंत्र-पुत्र
भारत माँ के हरकारे थे।

शापित इस जगती की पीड़ा का दंश तुम्हें मूर्छित करता
आँसू की स्याही शब्द बना, निर्झरणी-सा पलपल झरता

कल्याणमयी वाणी के तुम
परिभाषित स्नेह सितारे थे।

हे सर्वमंगले देख रहे थे, जग विष फैला रहा विषम
तुम थे विवेक की ज्योति-शिखा, ले आये जगमें शुभ संयम

संस्कार सुरभि के उन्मीलित
प्राणों के एक सितारे थे।

जीवन तेरा वरदान बना, कर्मठता का पाकर दुलार
सम्बल प्रतिकार शक्ति पाकर, निःशेषित जग का व्यथा-भार

सारदा-पुत्र थे वरदहस्त
माँ के प्राणों के प्यारे थे।

आनन्द सुधा-रस बरसाया, जिससे जगती को मिला त्राण
पाथेय श्रेय उद्गम अविरल, निर्वसन हुआ कालुष्य प्राण

तुम परमहंस की शुभ सत्ता-
प्रभुता के दिली दुलारे थे।

थे रामकृष्ण के वरद पुत्र
भारत माँ के हरकारे थे।

रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ

२००२-२००३ के लिए कार्यकारिणी समिति की रिपोर्ट का सारांश

रामकृष्ण मिशन की ९४वीं वार्षिक साधारण सभा बेलुड़ मठ में २१ दिसम्बर २००३ को अपराह्न ३.३० बजे आयोजित हुई।

इस वर्ष की महत्वपूर्ण घटनाओं में बंगलादेश के चिटागौंग में एक नये शाखा-केन्द्र का खोला जाना तथा वृन्दावन स्थित सेवाश्रम में मातृ-विभाग एवं दन्तचिकित्सा इकाई, कनखल स्थित सेवाश्रम में गहन चिकित्सा इकाई (Intensive Care Unit), लखनऊ स्थित विवेकानन्द पोलिक्लिनिक में बाल-चिकित्सा (Paediatric) विभाग और जम्मू शाखा केन्द्र में चल-चिकित्सा इकाई का उद्घाटन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

रामकृष्ण मठ की गतिविधियों में पूना शाखा केन्द्र में एक पोलिक्लिनिक का उद्घाटन तथा बलराम मन्दिर न्यास, कोलकाता एवं स्वामी ब्रह्मानन्द न्यास शिक्राकुलीन-ग्राम का रामकृष्ण मठ के साथ विलय विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस वर्ष के दौरान करीब ७.८१ करोड़ रुपये खर्च कर मिशन ने देश के विभिन्न भागों में बृहत् पैमाने पर राहत तथा पुनर्वास के कार्य किये जिससे १,७४५ गावों के लगभग ३.९८ लाख लोग लाभान्वित हुए। जनवरी २००१ में हुए महाविध्वंसकारी भूकम्प से प्रभावित लोगों की सेवा हेतु गुजरात में शुरू किये गये बृहत् पुनर्वास परियोजना को मार्च २००३ में पूरा किया गया। इस परियोंजना के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य सम्पादित हुए (क) ३९० आवासगृहों, ८१ विद्यालयों तथा ५ सभागृहों का निर्माण, (ख) अपना गृह स्वयं निर्माण करो योजना के तहत ११० परिवारों को गृह-सामग्री प्रदान तथा (ग) ७ जलाशयों की खुदाई। गुजरात भूकम्प-राहत एवं पुनर्वास परियोजना में करीब 20 करोड़ रुपये खर्च हुए।

निर्धन छात्रों को छात्रवृत्ति तथा वृद्ध, बीमार एवं असहाय लोगों को आर्थिक सहायता आदि कल्याण-कार्यों में २.६७ करोड़ रुपये व्यय हुए।

९ अस्पतालों एवं भ्रम्यमान चिकित्सा-इकाइयों सहित १११ चिकित्सा-केन्द्रों द्वारा करीब ६२ लाख रोगियों को चिकित्सा-सेवा प्रदान की गयी, जिसके तहत ३१.३६ करोड़ रुपये खर्च हुए।

हमारे शिक्षा-संस्थानों के द्वारा, बाल-विहार से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक, १.८० लाख विद्यार्थियों को शिक्षा प्रदान की गयी, जिनमें ६६ हजार से भी अधिक छात्राएँ थीं। शिक्षा कार्य के लिए ८०.३६ करोड़ रुपये खर्च किये गये।

९.८७ करोड़ रुपये की लागत पर कई ग्रामीण एवं आदिवासी विकास-योजनाओं का भी कार्यान्वयन किया गया।

इस अवसर पर अपने सदस्यों एवं मित्रों के प्रति उनके हार्दिक एवं निरंतर सहयोग के लिए हम आन्तरिक धन्यवाद एवं कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

स्मरणानन्द
(स्वामी स्मरणानन्द)
महासचिव

माँ सारदा-रथ-यात्रा का छपरा में स्वागत

रामकृष्ण मिशन रांची के तत्वावधान में मां सारदा के १५० वें जन्मोत्सव के अवसर पर निकाली गयी रथ यात्रा का झारखंड एवं बिहार के विभिन्न जिलों से छपरा पहुंचने पर शुक्रवार को भिखारी ठाकुर चौक पर भव्यस्वागत किया गया। इस बात की जानकारी देते हुए राम कृष्ण मिशन छपरा के सचिव स्वामी समर्पणानंद ने बताया कि मां सारदा के जन्मोत्सव के अवसर पर पूरे देश में रामकृष्ण भावधारा, विशेषकर मां सारदा के जीवन एवं उपदेश के बारे में जन मानस को जागृत करने के लिये विभिन्न स्थानों पर मां सारदा रथ की

व्यवस्था की गयी है जिसके द्वारा विभिन्न नगरों में घूम कर कार्यक्रम आयोजित किये जा रहे हैं।

ज्ञातव्य हो कि मां सारदा श्रीश्री रामकृष्ण देव की लीला सहचरी थीं जिनकी पूजा स्वयं श्रीरामकृष्ण महाराज के द्वारा भगवती के रूप में की गयी थी। राम कृष्ण मिशन की स्थापना में भी मां सारदा के द्वारा अभूतपूर्व योगदान दिया गया था।

रथ यात्रा का आश्रम परिवार में स्वागत करते हुये डा. केदारनाथ लाम ने कहा कि मां सारदा सीता की अवतार हैं जिनके द्वारा अपने पुत्र लाटू महाराज के घर पर आज पदार्पण किया गया है। इस अवसर पर बोलते हुए डा. उषा वर्मा ने मां की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उनके आदर्शों को जीवन में उतारने का संकल्प लेने की अपील की। इस अवसर पर रामकृष्ण मिशन से जुड़े लोगों के अलावा श्रद्धालु भक्तगण भी उपस्थित थे।

सिस्टर गार्गी का देहावसान

स्वामी विवेकानन्द पर महत्वपूर्ण शोध करने वाली प्रमुख शोधार्थी कुमारी मेरी लुइस बर्क का अेरिका में मंगलवार, २० जनवरी, २००४ को स्वर्गवास हो गया। उन्होंने पश्चिमी जगत में स्वामी विवेकानन्द के जीवनाचार एवं कर्तृत्व पर व्यापक, गहन एवं प्रेरक शोध किया था। पहल Swami Vivekananda in America और तदनन्तर Swami Vivekananda in the west नामक वृहत् पाँच खण्डों में प्रकाशित स्वामीजी के जीवन के अनेक अज्ञात एवं अनछुए प्रसंगों तथा घटनाओं को पहली बार श्रम एवं निष्ठापूर्वक प्रकाश में लाकर उन्होंने एक महनीय एवं वन्दनीय कार्य किया था। उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर अपना जीवन रामकृष्ण- विवेकानन्द भावधारा के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। लुई बर्क के स्थान पर सिस्टर गार्गी के नाम से वे विख्यात थीं। रामकृष्ण मिशन की सूचना के अनुसार ९३ वर्षीय सिस्टर गार्गी अपने अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को स्थित निवास स्थल पर श्रीरामकृष्ण लोक वासिनी हो गयीं। भगवान् श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा देवी एवं स्वामी विवेकानन्द उनकी आत्मा को अखण्ड शान्ति प्रदान करें–विवेक शिखा परिवार की यही प्रार्थना है।

❑

बल ही जीवन है और दुर्बलता मृत्यु। बल ही परम आनन्द है, शाश्वत और अमर जीवन है। दुर्बलता निरन्तर भारस्वरूप है, दुःखस्वरूप है। दुर्बलता ही मृत्यु है। बचपन से ही तुम्हारे मस्तिष्क में रचनात्मक, बलप्रद और सहायक विचार प्रवेश करें।

दुःखभोग का एकमात्र कारण है दुर्बलता। हम दुःखी हो जाते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। हम झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, हत्या करते हैं, तरह-तरह के अपराध करते हैं–क्यों ? इसलिए कि हम दुर्बल हैं। हम दुःख भोगते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। हम मर जाते हैं, क्योंकि हम दुर्बल हैं। जहाँ हमें दुर्बल कर देनेवाली कोई चीज नहीं, वहाँ न मृत्यु है, न दुःख।

बल ही एकमात्र आवश्यक वस्तु है। बल ही भवरोग की एकमात्र दवा है। धनिकों द्वारा रौंदे जानेवाले निर्धनों के लिए बल ही एकमात्र दवा है। विद्वानों द्वारा दबाये जानेवाले अज्ञजनों के लिए बल ही एकमात्र दवा है, और अन्य पापियों द्वारा सताये जानेवाले पापियों के लिए भी वही एकमात्र दवा है।

–स्वामी विवेकानन्द

भगवान् श्रीरामकृष्ण का सार्वजनीन मन्दिर

नम्र निवेदन

प्रिय, भक्तजन एवं सज्जनो !

नागपुर नगर में स्थित रामकृष्ण मठ स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण संघ का ही एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है जो पिछले ७४ वर्षों से भगवान् श्रीरामकृष्ण देव के आदर्शवाक्य 'शिवज्ञान से जीवसेना' को उद्देश्य मानकर जनता की अनेकविध सेवाओं में प्रयत्नशील रहा है।

मठ का वर्तमान मन्दिर जीर्ण-शीर्ण होने तथा भक्तों की बढ़ती संख्या से प्रार्थना-कक्ष छोटा पड़ने के कारण विवश होकर हमने पुराने भवन के स्थान पर ही संकल्पित बड़ा मन्दिर का निर्णय लिया है जिसके विवरण निम्नलिखित हैं–

मन्दिर की लम्बाई एवं चौड़ाई	११७'×४८'
मन्दिर की ऊँचाई	६७'
गर्भ-मन्दिर (पूजागृह)	१८'-६''×१८'-६''
उपासना कक्ष (५०० भक्तों के बैठने के लिये)	६७'×४०'
दोनों ओर के बरामदे	६७'×४'
मन्दिर-तलघर एवं सभा भवन	९१'-६''×५१

इस समस्त निर्माण कार्य पर लगभग तीन करोड़ रुपयों के व्यय के लिये यह मठ जन-साधारण से मिले दान पर ही निर्भर है। अतः आपसे हमारा आन्तरिक अनुरोध है कि मानवता की सर्वांगीण उन्नति हेतु प्रस्तावित इस योजना के लिए आप **उदारतापूर्वक दान** दें।

भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का आप सभी पर आशीर्वाद रहे, इस प्रार्थना सहित–

कृपया ध्यान दें–

दान की राशि डी.डी./चेक द्वारा **रामकृष्ण मठ, नागपुर** के नाम पर भेजे। दान की राशि आयकर की धारा ८०–जी के अन्तर्गत आयकर से मुक्त होगी। विदेशी मुद्रा में दिया गया दान भी स्वीकार किया जाएगा।

प्रभु की सेवा में,

(स्वामी ब्रह्मस्थानन्द)

अध्यक्ष

रामकृष्ण मठ, धंतोली, नागपुर

रामकृष्ण मठ, धन्तोली, नागपुर–४४० ०१२

फोन : २५२३४२२, २५३२६९०, फैक्स : २५३७०४२

ई.मेल : rkmath@nagpur.dot.net.in

निर्माणाधीन श्रीरामकृष्ण प्रार्थना मन्दिर

रामकृष्ण मिशन आश्रम
नारायणपुर, जिला बस्तर (छ.ग.) 494661
☎ : (07781) 252251 टेलिफैक्स 252393

सविनम्र निवेदन

प्रिय बन्धु,

भगवान श्री रामकृष्ण के आदर्शानुसार देश की एक अत्यन्त पिछड़ी जन-जाति, 'माड़िया' जनों का सर्वांगीण विकास साधित कर उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ने के अभिप्राय से रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर, छत्तीसगढ़ के अत्यधिक पिछड़े बस्तर जिले के दुर्गम, सड़क-विहीन अबूझमाड़ अंचल में अपने 5 उप केन्द्रों के साथ सन् 1985 से कार्यरत है।

अब तक संस्था द्वारा अपने नारायणपुर आधार शिविर (Base-Camp) के करीब 105 एकड़ के विस्तीर्ण दो भूखण्डों में प्रमुखतया आदिवासी जनों के हितार्थ एक **आदर्श आदिवासी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय-विवेकानन्द विद्यापीठ, 30 शय्या युक्त अस्पताल-विवेकानन्द आरोग्यधाम, चलित औषधालय, विवेक-रथ (Video-on-wheels), उचित मूल्य दुकान समूह एवं कृषि प्रदर्शन तथा प्रशिक्षण फार्म** का निःशुल्क संचालन किया जा रहा है।

आपको जानकर प्रसन्नता होगी कि संस्था को इस बीच अपने सुनियोजित तथा सुसंचालित सेवा अभियान में प्राप्त शानदार सफलताओं के लिए भारत व राज्य शासन तथा विशिष्ट औद्योगिक व सामाजिक प्रतिष्ठानों द्वारा संस्थापित अनेक ख्याति प्राप्त पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है।

भगवान श्री रामकृष्ण के जीवन तथा संदेश पर अवलम्बित हमारे इन सेवा प्रयासों को स्थिरता व गति प्रदान करने के लिए हम वर्षों से श्री रामकृष्ण देव को समर्पित एक विशाल तथा भव्य प्रार्थना मंदिर की आवश्यकता महसूस कर रहे हैं जहाँ हमारे छात्र सहयोगीगण तथा नगर निवासी नियमित रूप से ध्यान व प्रार्थना कर समाज समर्पित अनुशासित व सुखी जीवन जीने की शक्ति प्राप्त कर धन्य हों। हमें विश्वास है कि केवल धनाभाव के कारण यह पुनीत कार्य सम्पन्न न हो सके यह आप निश्चय ही नहीं चाहेंगे। प्रार्थना मंदिर निर्माण कार्य पूर्ण करने के लिए हमें रु० 25 लाख एवं नव निर्मित ग्रंथालय भवन को उपयोगी ग्रंथों एवं आवश्यक उपकरणों सं सुसज्जित करने के लिए रु० 5 लाख, इस प्रकार कुल रु० 30 लाख की आवश्यकता है।

अतः हमारा आपसे आन्तरिक अनुरोध है कि आप हमेशा की भाँति इस हेतु अपना भरपूर आर्थिक सहयोग प्रदान कर अनुगृहीत करें।

रामकृष्ण मिशन को दिया गया दान आयकर अधिनियम की धारा 80-जी के अनुसार आयकर मुक्त होगा। दान विदेशी मुद्रा में भी स्वीकार किया जाएगा।

कृपया चेक या ड्राफ्ट 'रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर' के नाम पर भजें।

प्रभु आपका मंगल करें।

(स्वामी निखिलात्मानन्द)
सचिव

डाक पंजीयन संख्या – सी.एच.पी. १४-८३

हमारा हिन्दी प्रकाशन

शिवानन्द स्मृतिसंग्रह

भगवान श्रीरामकृष्णदेव के अंतरंग पार्षद
स्वामी शिवानन्दजी महाराज के संस्मरण

तीन खण्डों में

प्रत्येक खण्ड का मूल्य रु. ५०.००

तत्त्वज्ञ महापुरुषों की वाणी और स्मृति त्रितापदग्ध मनुष्यों के जीवन-मार्ग की अमूल्य सम्पत्ति है। आत्मज्ञ पुरुषों के चरणों में बैठने का सौभाग्य अपरिमित पुण्यों के फलस्वरूप ही मिलता है। ऐसे ही महानुभावों ने इस ग्रन्थ के लिए अपने पवित्र स्मृति से विभिन्न प्रबन्ध लिखे हैं। यह ग्रन्थ संसार-ताप से तप्त मनुष्यमात्र के हृदय में शान्ति, आशा और उद्दीपन जागृत करनेवाला है।

अधिक जानकारी के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग) धन्तोली, नागपुर (महाराष्ट्र) ४४० ०१२

डॉ. केदारनाथ लाभ, रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार)
द्वारा प्रकाशित एवं सम्पादित तथा विवेकानन्द
ऑफसेट प्रिन्टर्स, छपरा – ८४१३०१ में मुद्रित।